मूल्य: ₹30

नवम्बर-दिसम्बर 2020

आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

औषधीय फसलों से बढ़ाएं आमदनी

कोरोनाकाल में जड़ी-बूटियों की मांग तेजी से बढ़ी है। ऐसे में किसान औषधीय पौधों की खेती करके अपनी आय बढ़ा सकते हैं। देश-दुनिया में जिस तरह से आयुर्वेद और हर्बल उत्पादों की मांग बढ़ रही है, उसे देखते हुए किसानों को परंपरागत खेती के अलावा औषधीय और जड़ी-बूटियों की खेती की तरफ भी अपना रुख करना चाहिए। हाल ही में आयुष मंत्रालय के अधीनस्थ राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (एनएमपीबी) ने औषधीय पौधों की खेती को बढ़ावा देने के लिए कई उपायों के तहत प्रमुख आयुष और हर्बल उद्योग निकायों के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं। विभिन्न आयुष उद्योग निकायों ने राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड को आश्वासन दिया है कि वे राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड समर्थित औषधीय पौधों की खेती करने वाले किसानों तथा संग्रहकर्ताओं को बाय-बैक गारंटी प्रदान करेंगे। इससे न्यूट्रास्युटिकल (पौष्टिक-औषध) और हर्बल उद्योग को गुणवत्ता वाले कच्चे माल की सतत आपूर्ति मिलेगी।

केन्द्रीय आयुष मंत्रालय और विभिन्न प्रदेशों के उद्यान एवं खाद्य प्रसंस्करण विभाग औषधीय खेती को बढ़ावा देने के लिए पहले से ही काम कर रहे हैं, जिसमें औषधीय खेती

शतावर की खेती

के लिए किसानों को अनुदान दिया जा रहा है। राष्ट्रीय आयुष योजना में किसानों को सर्पगन्धा, अश्वगंधा, ब्राह्मी, कालमेघ, कौंच, शतावरी, तुलसी, एलोवेरा, वच और आर्टीमीशिया जैसे औषधीय पौधों की खेती के लिए सरकार की तरफ से अनुदान दिया जा रहा है। इस योजना का लाभ लेने के लिए किसानों के पास अपने नाम से कम से कम एक एकड़ कृषि भूमि, खेत के पास सिंचाई साधन, बैंक में खाता और चेकबुक के साथ ही अपनी पहचान के लिए वोटर आईकार्ड, राशन कार्ड, आधार कार्ड या पासपोर्ट में से कोई एक होना चाहिए। लाभकर्ताओं का चयन 'पहले आओ, पहले पाओ' की तर्ज पर किया जा रहा है।

वर्षों से खेत में एक की तरह की परंपरागत फसल उगाने से खेत की पैदावार क्षमता कम होती जा रही है। ऐसे में खेत में फसल विविधता के लिए औषधीय खेती करने की सलाह कृषि वैज्ञानिकों की तरफ से दी जा रही है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार खेत में एक ही तरह की फसल लेने से खेत की उर्वरता प्रभावित होती है। इसलिए किसानों को फसल विविधता की सलाह दी जाती है। फसल विविधता के इस क्रम में गेहूं और धान के खेतों को खाली होने के बाद अगर किसान उसमें औषधीय पौधों की खेती करेंगे तो यह उनके लिए बहुत लाभकारी होगा। अगली बार जब वह उसमें धान और गेहूं उगाएंगे तो उसकी पैदावार अधिक होगी।

ऐसे करें खेती

कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार औषधीय पौधों की खेती में सर्पगंधा की एक हैक्टर की खेती के लिए सर्पगंधा की ताजी जड़ 100 कि.ग्रा., अश्वगंधा के लिए लिए प्रति हैक्टर 8 से 10 कि.ग्रा. बीज, ब्राह्मी के लिए प्रति हैक्टर 100 कि.ग्रा. बीज, कालमेघ के लिए प्रति हैक्टर 450 ग्राम बीज, कौंच के लिए प्रति हैक्टर 9 से लेकर 10 कि.ग्रा. बीज, शतावरी के लिए प्रति हैक्टर 3 कि.ग्रा. बीज, तुलसी के लिए प्रति हैक्टर 1 कि.ग्रा. बीज, एलोवेरा के लिए प्रति हैक्टर पांच हजार पौधे, वच के लिए प्रति हैक्टर 74074 तना और आर्टीमीशिया के लिए प्रति हैक्टर 50 ग्राम बीज की जरुरत पड़ती है।

प्रस्तुति: **अश्वनी कुमार निगम**

देश में औषधीय पौधों की समृद्ध धरोहर

भारत जैव विविधता के मामले में दुनिया के सबसे धनी देशों में से एक है। यहां पर 15 कृषि-जलवायु क्षेत्र हैं। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड के अनुसार फूलों और पौधों की 17000-18000 प्रजातियों में से, 7000 से अधिक का आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी (आयुष प्रणाली की चिकित्सा) जैसी लोक और प्रलेखित प्रणालियों में औषधीय उपयोग होता है। औषधीय पौधे न केवल पारंपरिक चिकित्सा और हर्बल उद्योग के लिए एक प्रमुख संसाधन आधार हैं, बल्कि भारतीय आबादी के एक बड़े हिस्से को आजीविका और स्वास्थ्य सुरक्षा भी प्रदान करते हैं।

औषधीय पौधों की लगभग 1178 प्रजातियों के व्यापार का अनुमान है, जिनमें से 242 प्रजातियों का वार्षिक उपभोग स्तर 100 मीट्रिक टन प्रतिवर्ष से अधिक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्व की 80 प्रतिशत जनसंख्या अपने स्वास्थ्य के लिए औषधीय पौधों और पशुओं पर आश्रित है। ऐसे में औषधीय पौधों की मांग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इस रिपोर्ट के अनुसार औषधीय पौधों और उसके उत्पादों का वैश्विक बाजार वर्ष 2050 तक 5 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंचने का अनुमान है। भारत इस क्षेत्र में अभी सालाना केवल 462 करोड़ रुपये के औषधीय पौधों के उत्पादों का ही निर्यात कर पा रहा है, जबकि चीन 22,000 करोड़ रुपये मूल्य का पौध आधारित औषधीय उत्पाद का निर्यात कर रहा है। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों की ओर से किसानों के बीच औषधीय खेती करने को लेकर विभिन्न प्रकार के जागरूकता कार्यक्रम और अभियान चलाए जा रहे हैं।

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी

वर्ष: 41, अंक: 6, नवंबर-दिसंबर 2020

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक : **अशोक सिंह**
संपादन सहयोग : **सुनीता अरोड़ा**

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 150.00

E-mail : phalphul@gmail.com

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें।

विषय सूची

संपादकीय — बागवानों का जागरूक होना है जरूरी-अशोक सिंह

बीजीय मसाले — 4
कलौंजी है एक महत्वपूर्ण औषधीय एवं मसाला फसल
आई.एस. नरूका, पी.पी. सिंह, जितेन्द्र भण्डारी **और** के.सी. मीणा

प्रबंधन — 6
ऑर्किड्स को टिपभेदक कीटों से नुकसान
राकेश कुमार सिंह, एस.एस. विश्वास, लक्ष्मण चन्द्र, डी.डी.आर. सिंह **और** रूमकी संगमा

यंत्रीकरण — 8
लहसुन की खेती के लिए कृषि यंत्र
दिलीप जाट, एन.एस. चंदेल **और** सैयद इमरान

औषधीय पादप — 10
लाभकारी व्यवसाय है करी पत्ता की खेती
कर्म बीर, अंजीत कुमार, प्रवीण जाखड़, जी.बी. नाइक **और** एम. मधु

नियंत्रण — 12
कद्दू में कीट प्रबंधन
दिनेश कच्छावा

रोकथाम — 14
औषधीय फसलों में रोग और कीट प्रबंधन
राम प्रसन्न मीना **और** बृजेश कुमार मिश्र

मसाला — 17
रबी सौंफ की खेती
साबले पी.ए., पुष्पराज सिंह **और** सुषमा सोनपुरे

असर — 19
सब्जी उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव
प्रमिला, उदित कुमार, रमेश कुमार गुप्ता **और** एल.एम. यादव

उपयोगिता — 21
कम लागत की फसल ग्वारपाठा
सरफराज अहमद, जितेन्द्र सुमन **और** सुनील गोचर

विकल्प — 23
औषधीय पौधों की खेती
सतेन्द्र कुमार, राजीव कुमार अग्रवाल **और** सुनील कुमार

आय — 27
आंवला की बागवानी से लाभ
अरविन्द कुमार **और** ऋषिपाल

सुगंध — 29
गुलाब की खुशबूयुक्त जिरेनियम की उन्नत खेती
दिपेन्द्र कुमार, प्रियंका सूर्यवंशी, अमित तिवारी, सोनवीर सिंह, गुंजन भट्ट, आर. सी. पडालिया **और** वेद राम सिंह

विषय-सूची

मुनाफा — 32
अमरूद में थैलाबंदी तकनीक अपनाएं और आमदनी बढ़ाएं
कंचन कुमार श्रीवास्तव **और** दिनेश कुमार

गृहवाटिका — 35
न्यूट्री-गार्डन से आय
कुमारी शुभा, अनिर्बाण मुखर्जी, उज्ज्वल कुमार **और** तन्मय कुमार कोले

जल बचत — 38
बीजीय मसाला फसलों में बूंद-बूंद सिंचाई
मोती लाल मीणा **और** धीरज सिंह

उपचार — 41
पहचानिए और सुधारिए आम में बोरॉन की कमी
के.एन. तिवारी **और** राकेश तिवारी

बचाव — 43
फलदार पौधों के प्रमुख रोग एवं उनका निदान
अर्चना उदय सिंह, रमेश चन्द **और** सुभाष चन्द

आमदनी — 46
आम की संकर किस्मों की लाभकारी बागवानी
संजय सिरोही, करुणा दीक्षित **और** सुरेश चंद राणा

नवीन — 49
बेल की उन्नत प्रजाति 'गोमा यशी'
ए.के. सिंह, संजय सिंह, आर.एस. सिंह **और** पी.एल. सरोज

पोषण — 51
कीवी फल
विद्याराम सागर, राम रोशन शर्मा **और** जितेन्द्र कुमार

व्यावसायिक फसल — 53
रबी प्याज की उन्नत खेती
राजेन्द्र सिंह यशोना **और** राधेश्याम शर्मा

जानकारी — 56
शीत ऋतु में बागों के कार्यकलाप
राम रोशन शर्मा, हरे कृष्णा, स्वाति शर्मा **और** विजय राकेश रेड्डी

नई सोच — **आवरण II**
औषधीय फसलों से बढ़ाएं आमदनी

सार समाचार — **आवरण III**
आम की नई किस्में अम्बिका और अरुणिका विकसित

संपादकीय

बागवानों का जागरूक होना है जरूरी

देश के किसानों के बीच रही दीर्घकालिक कृषि परम्परा, विभिन्न प्रान्तों में उपलब्ध जलवायु विविधता और बागवानी अनुसंधान के क्षेत्र की उल्लेखनीय उपलब्धियों की बदौलत ही वर्तमान में वैश्विक स्तर पर भारत फलों और सब्जियों के उत्पादन में दूसरे स्थान पर पहुंच सका है। यही नहीं देश में फलों और सब्जियों की मौसमी किस्मों का उत्पादन चक्र वर्षभर अनवरत चलता रहता है। एक मोटे अनुमान के अनुसार विश्वभर में उत्पादित होने वाली कुल बागवानी फसलों का लगभग 10 प्रतिशत भारत में ही पैदा होता है। यह भी वास्तविकता है कि इन उत्पादों की शेल्फ लाइफ कम होने, किसानों के बीच सही तकनीकों के प्रति जागरूकता के अभाव की स्थिति तथा भण्डारण एवं प्रसंस्करण की यथोचित सुविधाओं की अनुपलब्धता की वजह से इस उपज का एक हिस्सा बर्बाद हो जाता है। यही नहीं किसी-किसी वर्ष मांग की तुलना में उपज अधिक होने पर बाजार भाव गिरने के कारण किसानों के लिए लागत मूल्य निकाल पाना भी मुश्किल हो जाता है। इन बातों से सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि ऐसी स्थितियों से उत्पादकों की आमदनी किस हद तक प्रभावित होती होगी। इसके अतिरिक्त देश को भी इन बागवानी उत्पादों के प्रसंस्करण और निर्यात से होने वाली संभावित आय का नुकसान उठाना पड़ रहा है।

केंद्र और राज्य सरकारों के स्तर पर कई ऐसी योजनायें संचालित की जा रही हैं, जिनका लक्ष्य बागवानी फसलों की बर्बादी पर अंकुश लगाना और उत्पादकों की आमदनी में बढ़ोतरी करना है। विकासशील देश होने के नाते संसाधनों की सीमित उपलब्धता के कारण आवश्यक इन्फ्रास्ट्रक्चर खड़ा करने में तमाम तरह की अड़चनें सरकार के समक्ष आ रही हैं। ऐसे में यह अत्यंत जरूरी हो जाता है कि बागवानी के काम से जुड़े किसान भाइयों को जागरूक किया जाए कि वे अपने स्तर पर भी बदलाव लाने का प्रयास करें और इस बर्बादी को रोकते हुए अपनी आय में वृद्धि कर सकें। इस क्रम में उन्हें फसल कटाई उपरान्त की तकनीकों के बारे में आवश्यक जानकारियां भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के देशव्यापी अनुसंधान नेटवर्क, समीपवर्ती कृषि विज्ञान केन्द्रों तथा कृषि विश्वविद्यालयों के माध्यम से जुटानी होंगी। कई सरकारी संस्थान समय-समय पर इस विषय पर लघु अवधि के ट्रेनिंग कार्यक्रमों का भी आयोजन करते रहते हैं। इन जानकारियों में बागवानी फसलों की तुड़ाई का सही तरीका (ताकि कम से कम फलों/सब्जियों की फसल को क्षति हो), कोल्ड स्टोरेज की सुविधा के अभाव में सस्ती वैज्ञानिक विधियों से कैसे उनकी शेल्फ लाइफ को बढ़ाया जाए, भण्डारण के दौरान रखरखाव कैसे हो, विक्रय के क्रम में परिवहन के दौरान सही पैकिंग किस तरह से की जाए, उत्पादकों के सहकारी संघ की स्थापना कर सामूहिक तौर पर रेफ्रिजिरेटेड वाहनों का ढुलाई के लिए प्रयोग किया जाए, ई-नाम ऐप के जरिये कैसे अधिक कीमत पर बिक्री की जाए आदि का खासतौर पर उल्लेख किया जा सकता है। यह बताने की जरूरत नहीं है कि इन छोटे-छोटे बदलावों के काफी दूरगामी परिणाम सामने आ सकते हैं।

यहां यह जिक्र करना भी प्रासंगिक होगा कि इस विषय पर सरकारी स्तर पर संचालित की जा रही विभिन्न योजनाओं का लाभ उठाने का भरसक प्रयास किया जाना चाहिए। ऐसी प्रमुख योजनाओं में समेकित बागवानी विकास मिशन, केन्द्रीय खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय द्वारा जारी विभिन्न संबंधित कार्यक्रम, कृषि एवं प्रसंस्करित खाद्य निर्यात विकास प्राधिकरण (एपीडा) द्वारा उपलब्ध विभिन्न योजनाओं, राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा उपलब्ध रियायती ऋण आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

आशा करते हैं कि बागवान भाई उपरोक्त सुझावों पर गौर करेंगे और इस दिशा में गंभीर पहल कर न सिर्फ अपनी आमदनी में बढ़ोतरी करने में सफल होंगे बल्कि देश की तरक्की में भी बहुमूल्य योगदान देंगे।

(अशोक सिंह)

कलौंजी है एक महत्वपूर्ण औषधीय एवं मसाला फसल

आई.एस. नरूका*, **पी.पी. सिंह***, **जितेन्द्र भण्डारी*** और **के.सी. मीणा***

कलौंजी एक औषधीय फसल है, जिसका प्रयोग विभिन्न प्रकार की परंपरागत दवाओं को बनाने में किया जाता है। यह डायरिया, अपच और पेट दर्द में काफी लाभदायक है। कलौंजी का उपयोग यकृत के लिए लाभकारी है। इसका प्रयोग सिर दर्द और माइग्रेन में भी किया जाता है। इसके बीज में 0.5 से 1.6 प्रतिशत तक आवश्यक तेल पाया जाता है, जो कि अमृतधारा इत्यादि औषधियों के बनाने में काम आता है। कलौंजी की खेती के लिए कार्बनिक पदार्थ वाली बलुई दोमट मृदा अच्छी रहती है। पुष्पण और बीज के विकास के समय मृदा में उचित नमी का होना आवश्यक है। इसकी खेती के लिए कम से कम 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। यह फसल किसानों के लिए काफी लाभदायक है।

कलौंजी (काला जीरा) रनेनकुलेसी परिवार की बीजीय मसाला फसल है। इसका उत्पत्ति स्थान मेडिटेरियन क्षेत्र है और पश्चिमी एशिया से पूर्वी एशिया में इसका विस्तार हुआ। कलौंजी के उत्पादन में भारत, विश्व में प्रथम स्थान पर है। मध्य प्रदेश में रीवा, मंडला, शाजापुर, उज्जैन, रतलाम, नीमच और मंदसौर जिलों में इसको बहुतायत से उगाया जाता है।

*वैज्ञानिक, (मसाला एवं बागानी फसल). उद्यानिकी महाविद्यालय, मंदसौर-458002 (मध्य प्रदेश)

जलवायु

उत्तर भारत में इसकी बुआई रबी की फसल के रूप में की जाती है। प्रारंभ में वानस्पतिक वृद्धि के लिए ठंडा मौसम अनुकूल होता है, जबकि बीज परिपक्व होते समय शुष्क एवं अपेक्षाकृत गर्म मौसम उपयुक्त होता है।

भूमि की तैयारी

यद्यपि कलौंजी को विभिन्न प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है, लेकिन पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ वाली बलुई दोमट मृदा उत्तम होती है। मृदा, भुरभुरी एवं उचित जल निकास वाली होनी चाहिए।

खेत की तैयारी के लिए एक गहरी जुताई तथा दो-तीन उथली जुताइयों के बाद पाटा लगाना पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व खेत को सुविधानुसार छोटी-छोटी क्यारियों में बांट लेना चाहिए, ताकि सिंचाई के जल का फैलाव समान रूप से हो सके। इससे बीज का जमाव एक समान होता है और फसल अच्छी होती है। अगर मृदा में दीमक की समस्या है तो अंतिम जुताई के समय क्विनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत अथवा मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत में से किसी एक दवा की 25 कि.ग्रा. मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से खेत में एक समान बिखेर कर मिला दें।

खरपतवार नियंत्रण

जब फसल 30-35 दिनों की हो जाये, उसी समय कतारों से अतिरिक्त पौधों को भी निकाल देना चाहिए, ताकि फसल वृद्धि एवं विकास अच्छी तरह हो सके। दूसरी निराई-गुड़ाई 60-70 दिनों के बाद करनी चाहिए। इसके बाद अगर आवश्यक हो तो एक निराई और कर देनी चाहिए। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डिमेथलिन दवा 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को जमाव पूर्व 500-600 लीटर पानी में घोलकर मृदा पर छिड़काव करना चाहिए। इस विधि से अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि में पर्याप्त नमी हो।

कलौंजी के ताजा बीज

सड़न की रोकथाम

माहूं (एफिड): इस कीट के वयस्क तथा प्रौढ़ फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। ये फसल के कोमल हिस्सों से रस चूसते हैं। इस कारण फसल की उपज घट जाती है। इसके नियंत्रण के लिए 0.1 प्रतिशत मैलाथियान (50 ई.सी.) अथवा 0.03 प्रतिशत डाइमेथोएट (30 ई.सी.) दवा के 500 लीटर घोल का प्रति हैक्टर की दर से प्रभावित फसल पर छिड़काव करना चाहिए।

दीमक: यह कीट कलौंजी को काफी क्षति पहुंचाता है। दीमक फसल के विभिन्न भागों को खाकर हानि पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए 4 लीटर प्रति हैक्टर की दर से क्लोरोपाइरीफॉस को पानी में मिलाकर सिंचाई के साथ दें।

कलौंजी की व्यावसायिक खेती का बढ़ता चलन

बुआई का समय

उत्तर भारत में बुआई के लिए मध्य सितंबर से मध्य अक्टूबर सबसे अच्छा होता है।

बीजदर

सीधी बुआई के लिए 7 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर के लिए पर्याप्त होता है।

बीजोपचार

बीज को बुआई से पूर्व कैप्टॉन, थीरम व बाविस्टीन से 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करना चाहिए।

बुआई की विधि

कतार विधि: इस विधि में बीज की बुआई 30 सें.मी. की दूरी पर बनी कतारों में करनी चाहिए। बीज बोते समय यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि गहराई 2 सें.मी. से ज्यादा न हो अन्यथा बीज जमाव पर इसका असर पड़ता है।

सिंचाई

पुष्पण एवं बीज विकास के समय मृदा में उचित नमी का होना आवश्यक है। अच्छी पैदावार के लिए कुल 5-6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है।

फसल संरक्षण

रोग नियंत्रण

जड़ सड़न: यह रोग राइजोक्टोनिया और फ्यूजेरियम द्वारा संयुक्त रूप से उत्पन्न होता है। इस रोग में रोगग्रस्त पौधे पहले तो पीले दिखते हैं तथा बाद में पत्तियां सूख जाती हैं और पौधा मर जाता है। इससे बचाव के लिए बीज को बुआई से पूर्व ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। गर्मी की जुताई एवं उचित फसलचक्र अपनाने से भी जड़ रोग का प्रकोप कम होता है।

खाद व उर्वरक

भूमि की तैयारी के समय अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट 10 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से खेत में मिला देनी चाहिए। सामान्य उर्वर क्षमता वाली भूमि में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 20 कि.ग्रा. पोटाश का प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए। एक तिहाई नाइट्रोजन तथा सम्पूर्ण फॉस्फोरस मृदा में अंतिम जुताई के समय मिला देनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन को दो भागों में बांटकर बुआई के 30 और 60 दिनों बाद खड़ी फसल में सिंचाई के साथ देना चाहिए।

उन्नत किस्में

एन.आर.सी.एस.एस.एन.-1: यह प्रजाति 135 दिनों में तैयार हो जाती है। यह जड़गलन रोग के प्रति सहनशील है। इसकी उत्पादन क्षमता 12 क्विंटल/हैक्टर है।

आजाद कलौंजी: यह 130 से 135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उत्पादन क्षमता 8-10 क्विंटल/हैक्टर है।

एन.एस.-44: यह 140 से 150 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उत्पादन क्षमता 4.5-6.5 क्विंटल/हैक्टर है।

एन.एस.-32: यह 140 से 150 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उत्पादन क्षमता 4.5-5.5 क्विंटल/हैक्टर है।

अजमेर कलौंजी: यह 135 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उत्पादन क्षमता 8 क्विंटल/हैक्टर है।

कालाजीरा: यह फसल 135 से 145 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी उत्पादन क्षमता 4-5 क्विंटल/हैक्टर है।

अन्य किस्में: राजेन्द्र श्याम एवं पंत कृष्णा।

कलौंजी की फसल

फसल कटाई: प्रायः कलौंजी की फसल 140-160 दिनों में कटाई के लिए तैयार हो जाती है। पौधे को हंसिए से काट लेते हैं। इसके बाद छोटे-छोटे बंडल बनाकर अच्छी तरह से सुखा लेते हैं। बीज को डंडे से पीटकर या रगड़कर अलग करते हैं। इसके बाद बीजों को सुखाकर बोरियों में भरकर रखते हैं।

उपज: औसतन 8-10 क्विंटल बीज/हैक्टर प्राप्त किया जा सकता है। ■

ऑर्किड्स को टिपभेदक कीटों से नुकसान

राकेश कुमार सिंह*, एस.एस. विश्वास*, लक्ष्मण चन्द्र*, डी.डी.आर. सिंह* और **रूमकी संगमा***

ऑर्किड्स लंबे समय से मनुष्य के आकर्षण का केंद्र रहा है। इसके फूल अपने अद्भुत आकार, रंग, रूप और सुगंध के लिये विश्वविख्यात हैं। ऑर्किड्स के फूलों में एक अद्भुत आकर्षण क्षमता होती है, जो सबको अपनी ओर मोहित करती है। इसमें अन्य फूलों की अपेक्षा अधिक लंबे समय तक ताजा अवस्था में बने रहने की भी क्षमता होती है। ऑर्किड्स विशालतम कुसुमित पौधों के परिवार से संबंधित है। इसकी 2500 प्रजातियां अनुमानित हैं और बहुत सी किस्में खोज के द्वारा पंजीकृत की जा रही हैं। पूरे देश में लगभग 1350 ऑर्किड्स की प्रजातियां पाई जाती हैं और ये देश के उष्णकटिबंधीय से लेकर समशीतोष्ण जलवायु क्षेत्रों में वितरित हैं। इनकी खेती कटफ्लावर्स, पॉटेड पौधे और बहुत से बहुमूल्यवर्धित उत्पादों के लिये व्यावसायिक रूप से की जाती है। सबसे अधिक प्रसिद्ध और व्यावसायिक रूप से खेती की जाने वाली प्रमुख ऑर्किड्स प्रजातियां सिम्बिडीयम, डेंड्रोबियम, ओंसिडियम, फेलोनोप्सिस, वंडा तथा पेफियोपेडिलम हैं। देश की विशाल ऑर्किड्स संपदा के महत्व को प्रकाश में लाने के लिए विभिन्न राज्यों से ऑर्किड्स जर्मप्लाज्म संग्रहण एवं संरक्षण तथा रखरखाव का काम वर्ष 1998 से भाकृअनुप-राष्ट्रीय ऑर्किड्स अनुसंधान केंद्र, पाक्योंग, पूर्व सिक्किम द्वारा किया जा रहा है।

ऑर्किड के उत्पादन क्षेत्र में फसल की सीमित गुणवत्ता एवं कम उत्पादन के प्रमुख कारक अजैव कण और कीट हैं। विभिन्न कीट, जो कि ऑर्किड्स को प्रकोपित करते हैं, उनमें से स्केल कीट, माहूं, पर्णनाशी, झींगुर एवं गैर कीट जैसे-बरुथी, घोंघा तथा मल कीट प्रमुख हैं।

संरक्षित अवस्था में ऑर्किड्स की खेती को कीटों से बचाया जा सकता है। इसलिये ग्लासगृह, हरितगृह आदि में कीटों का विकास अधिक तीव्र गति से होता है। हरितगृह में फसलों पर आर्थोपोड कीट द्वारा की गई क्षति, कीट और मौसम के अनुसार बदलती रहती है। फसल द्वारा सहन करने की क्षमता फसल की प्रजातियों के ऊपर निर्भर करती है। ऑर्किड्स को संक्रमित करने वाले टिपभेदक कीट, उनकी जैविकी और नुकसान करने के तरीके एवं एकीकृत कीट प्रबंधन निम्नलिखित हैं:

कीट का जीवनचक्र

टिपभेदक कीटों का जीवनचक्र 4 चरणों में पूरा होता है। प्रथम चरण अंडा, द्वितीय चरण डिम्भक, तृतीय चरण प्यूपा और चतुर्थ चरण वयस्क। मादा कीट ऑर्किड्स के प्रोह के ऊपरी पत्तियों (सबसे कोमल पत्ती) के ऊपर अपने अंडे देती है। इन अंडों से डिम्भक निकलते हैं। इनसे कुछ समय के बाद प्यूपा बनते हैं, फिर प्यूपा से वयस्क टिपभेदक कीट तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार इनका जीवनचक्र पूरा हो जाता है।

*भाकृअनुप-राष्ट्रीय ऑर्किड अनुसंधान केंद्र, पाक्योंग-737106 (सिक्किम)

प्यूपा डिम्भक द्वारा संक्रमित ऑर्किड्स प्रोह

टिपभेदक कीटों की वयस्क मादा, ऑर्किड्स के प्रोह की ऊपरी पत्तियों पर अपने अंडे देती हैं। इनके वयस्क नर और मादा में थोड़ा अंतर होता है। वयस्क मादा, नर वयस्क की अपेक्षा आकार में थोड़ी बड़ी होती हैं। ऑर्किड्स को इनके अंडों से निकलने वाले डिम्भक सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं।

वैज्ञानिक नाम: *पेरीडिडाला* स्पिसीज
परिवार: टोरट्रिसाईडी
वर्ग: लेपिडोप्टेरा

डेंड्रोबियम नोबिले, डेंड्रोबियम डेंसिफ्लोरम, डेंड्रोबियम संकर, अरंडा संकर, मोकारा संकर, वंडा, पेपीलियोनेन्थे, एरैडिस, अकैम्पे, इरिया, ईपीडेंड्रम तथा लिपेरिस इत्यादि।

वितरण

केरल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, ओडिशा, अंडमान एवं निकोबार और देश के उत्तर-पूर्व राज्यों तथा हिमालय क्षेत्रों में पाये जाते हैं।

पहचान

इस कीट के वयस्क छोटे और इनका रंग गहरा भूरा अथवा काला होता है। इनके पंखों पर छोटे-छोटे सफेद रंग के चमकीले धब्बे होते हैं। इनके पंखों का फैलाव लगभग 8-10 मि.मी. तक होता है। इस कीट का डिम्भक पीले रंग का होता है। इसके शरीर का अगला भाग (सिर) काला होता है और जैसे-जैसे डिम्भक बढ़ते जाते हैं, इनके शरीर का रंग हल्के हरे रंग में परिवर्तित होता जाता है। डिम्भक, ऑर्किड्स के प्रोह को खाने के साथ-साथ अपने मल को ऊपर निकालते जाते हैं यही इनकी उपस्थिति की पहचान होती है।

क्षति पहुंचाने की प्रवृति

ये कीट ऑर्किड्स की कई प्रजातियों को नुकसान पहुचाते हैं। इस कीट का आक्रमण मार्च से अक्टूबर तक होता है। जब मादा कीट अपने अंडों को प्रोह के ऊपर छोड़ती है, उस समय वर्षा ऋतु का आरंभ होता है। इसके बाद डिम्भक निकलते ही ऑर्किड्स को अपने मुखांगों द्वारा खाना शुरू कर देते हैं। ये उस पर एक सुरंग बना लेते हैं तथा उसके अंदर प्रवेश कर जाते हैं। ये कीट अंदर के भागों (जाइलम एवं फ्लोयम) को खाते हैं, जिसके कारण पौधे का ऊपरी भाग सूख जाता है। इससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है। टिपभेदक कीट के अधिक प्रकोप से फूल नहीं लगते और यदि लग भी गए तो फूल की गुणवत्ता खराब हो जाती है। इसका बाजार में उचित मूल्य नहीं मिल पाता है और किसानों को आर्थिक रूप से नुकसान हो जाता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन

परंपरागत प्रथाएं

- स्वच्छ खेती के लिए संक्रमित पौधों को झुंड से अलग कर देना चाहिए।
- वायु संचार, उर्वरक और सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
- वर्षा ऋतु में कम से कम 10-15 दिनों के अंतराल पर पानी देना चाहिए।
- जिस प्रोह पर इस कीट का प्रकोप हो जाये, उसको ऊपर से काटकर फेंक देना चाहिए, जिससे टिपभेदक कीट का जीवनचक्र पूरा न हो सके।
- हरितगृह अथवा पॉलीगृह के चारों तरफ कीट अवरोधक जाली लगानी चाहिए, जिससे इनके मादा कीट अपने अंडे न दे पायें।

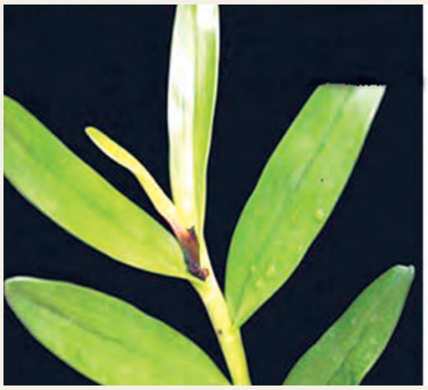

टिपभेदक द्वारा प्रकोपित प्रोह

टिपभेदक का वयस्क

जैविक नियंत्रण

- जैसे ही इस कीट के अंडे पौधों पर दिखाई दें, तुरन्त ही नीम तेल 0.03 प्रतिशत का 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।
- सूक्ष्मजीव जैविक कीटनाशक बैसिलस थुरींजिएन्सिस अथवा मेटाराइजम ऐनिसोपलिए का 2-3 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण

- जब टिपभेदक कीटों का प्रकोप ज्यादा हो जाये तो आवश्यकता पड़ने पर इनमें से किसी एक कीटनाशक जैसे-फिप्रोनिल, एंडोसल्फान, ट्राइजोफॉस अथवा क्लोरपाइरिफॉस का 0.05 प्रतिशत घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

टिपभेदक कीट का डिम्भक

टिपभेदक कीट

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदते हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें। इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख के साथ अपना ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

-संपादक

लहसुन की खेती के लिए कृषि यंत्र

दिलीप जाट*, एन.एस. चंदेल* और **सैयद इमरान***

लहसुन, भारत में उगाए जाने वाली एक महत्वपूर्ण कंदीय फसल है। इसका रसोई तथा चिकित्सा के क्षेत्र में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। भारत में 2.8 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में लहसुन की खेती की जाती है। इससे 5.76 टन/हैक्टर की उत्पादकता के साथ कुल 16.17 लाख टन उत्पादन होता है। भारत के कई हिस्सों में लहसुन की बुआई नवंबर एवं दिसंबर में होती है तथा इसकी खुदाई अप्रैल-मई में की जाती है। लहसुन की खेती के लिए मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, असोम, पंजाब, पश्चिम बंगाल और हरियाणा का मौसम बहुत ही उपयुक्त माना जाता है।

लहसुन की खेती मुख्यत: छोटे एवं सीमांत किसानों द्वारा की जाती है। श्रमिकों की उपलब्धता न होने के कारण एवं संसाधनों के अभाव में इसकी खेती बड़े पैमाने पर नहीं की जा रही है। कई प्रभावी तकनीकें उपलब्ध हैं, परन्तु किसानों को उनकी जानकारी न होना, इसके क्षेत्रफल में वृद्धि नहीं होने का एक प्रमुख कारण है। बड़े पैमाने पर लहसुन का उत्पादन करने में कृषि यंत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि यंत्रीकरण द्वारा कृषि के विभिन्न कार्यों को समय पर पूर्ण करके कृषि क्षेत्र में उत्पादन, उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ाने में मदद मिलती है। यंत्रों के उपयोग से समय की बचत के साथ ही कार्य कुशलता एवं दक्षता में भी वृद्धि होती है। इनके द्वारा कृषि में प्रयुक्त आदानों जैसे कि बीज, खाद, सिंचाई जल एवं रसायनों का उचित समय पर प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उत्पादन की इकाई लागत को कम करके मुनाफे को बढ़ाया जा सकता है। लहसुन की खेती के लिए विभिन्न प्रकार के कृषि यंत्र उपलब्ध हैं।

*भाकृअनुप-केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल (मध्य प्रदेश)

जुताई के लिए प्रयुक्त यंत्र

कृषि में जुताई एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसका मुख्य उद्देश्य खेत को बीज के बोने, जमने तथा पौधों के बढ़ने के लिये उचित दशा में तैयार करना है। लहसुन के उत्पादन के लिए समतल तथा खरपतवाररहित भूमि अत्यंत आवश्यक है। मोल्ड बोर्ड या डिस्क प्लाऊ की सहायता से 20-25 सें.मी. गहरी जुताई की जाती है। इसके बाद कल्टीवेटर को 2-3 बार चलाकर मृदा को भुरभुरा किया जाता है। बुआई पूर्व भूमि को अच्छी तरह तैयार करने के लिए रोटावेटर का उपयोग

काफी लाभकारी साबित होता है। यह यंत्र कम समय तथा कम लागत में मृदा को तैयार करने के लिए उपयुक्त है।

रेज्ड बेड मेकर

पिछले कुछ वर्षों से रेज्ड बेड तकनीक द्वारा फसलों की बुआई में वृद्धि पाई गयी है। इस तकनीक द्वारा ऊंची उठी हुई क्यारियों पर फसल की बुआई की जाती है। रेज्ड बेड तकनीक द्वारा बोई हुई फसलें कम अथवा बहुत अधिक वर्षा होने पर भी बेहतर उत्पादन देती हैं। भूमि को तैयार करने के बाद रेज्ड बेड मेकर उपकरण द्वारा खेतों में क्यारियां बनायी जाती हैं। क्यारी की चौड़ाई तथा पंक्तियों के मध्य दूरी विभिन्न फसलों एवं मृदा के प्रकार पर निर्भर करती है। रेज्ड बेड मेकर उपकरण में बेड की चौड़ाई को बदलने का प्रावधान होता है।

लहसुन हार्वेस्टर

लहसुन सीड ड्रिल

किसानों द्वारा प्राय: लहसुन की बुआई छोटे भूखंडों में 10-15 सें.मी. की दूरी पर कतारों में 3-5 सें.मी. गहराई में की जाती है। मशीन द्वारा बुआई करने के लिए लहसुन सीड ड्रिल उपलब्ध है। इसके द्वारा एक साथ 17 कतारों में बुआई कर सकते हैं। बुआई की दर 5-7 क्विंटल/हैक्टर रखी जाती है। इसके माध्यम से बुआई के साथ-साथ गहराई में भी उर्वरक डाला जा सकता है। इस मशीन की कार्य क्षमता 0.50-0.65 हैक्टर/घंटा है। मशीन द्वारा पंक्तिबद्ध तरीके से बुआई करने से बीज दर में भी कमी आती है।

रसायन छिड़काव यंत्र

प्राय: फसल पर कीट तथा रोगों का प्रकोप होता है। इनके प्रकोप से पूरी फसल नष्ट भी हो जाती है। इसके अतिरिक्त पौधे की वृद्धि को खरपतवारों से भी नुकसान होता है। कीटों, रोगों एवं खरपतवारों की रोकथाम के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग किया जाता है। लहसुन में इन रसायनों का छिड़काव नैपसैक या बूम प्रकार के स्प्रेयर से करना उचित रहता है। नैपसैक स्प्रेयर को कंधों पर बेल्ट द्वारा लगाकर रखा जाता है। इसकी कार्यक्षमता 0.4 हैक्टर/दिन है। इसका वजन 7.5 कि.ग्रा. होता है। यह 10-18 लीटर की टंकी में उपलब्ध है। बूम स्प्रेयर ट्रैक्टरचालित होता है। इसमें रसायन का प्रवाह उच्च दाब पंप के माध्यम से टंकी से नोजल तक होता है। इसमें नोजल की संख्या 10 से 20 तक होती है। लहसुन की फसल में बूम स्प्रेयर के उपयोग के लिए ट्रैक्टर के पहियों के मध्य की चौड़ाई को ध्यान में रखकर फसल पंक्तियों में रोपित करना आवश्यक है।

लहसुन हार्वेस्टर

लहसुन को प्राय: किसानों द्वारा जमीन को खोदकर या इसके तने को हाथों से खींचकर निकाला जाता है। इस कार्य में बहुत समय लगता है। इसके लिए प्रति हैक्टर लगभग 30-35 श्रमिकों की आवश्यकता होती है। कई जगहों पर किसानों द्वारा कल्टीवेटर द्वारा खोदकर भी लहसुन को निकाला जाता है। इससे नुकसान अधिक होता है एवं इनको इकट्ठा करने में श्रमिक लागत भी आती है। ट्रैक्टरचलित लहसुन खोदने वाले यंत्र से यह काम बड़ी आसानी से किया जा सकता है। इस मशीन में एक 1.5 मीटर चौड़ा ब्लेड लगा होता है, जो भूमि को खोदने का काम करता है। इसके बाद लहसुन को चेन टाइप की पृथक्करण जाली से गुजारा जाता है। पृथक्करण जाली में लोहे की छड़ें समान दूरी पर लगी होती हैं। मशीन के संचालन के दौरान पृथक्करण जाली से पौधों में लगी मिट्टी अलग हो जाती है। इस जाली के पिछले हिस्से से लहसुन गिरकर एक पंक्ति में जमा हो जाता है। इसके बाद लहसुन की गांठों को 3-4 दिनों तक खेत में सुखाया जाता है। इस मशीन को ट्रैक्टर के पीटीओ द्वारा संचालित किया जाता है। मशीन की कार्य क्षमता 0.25 से 0.30 हैक्टर/घंटा होती है। इसकी परिचालन लागत 3000-3500 रुपये/हैक्टर है। काली मृदा में यह मशीन चलाने के लिए थोड़ी नमी का होना आवश्यक है। लाल मृदा में इसे बड़ी सुगमता से चलाया जा सकता है। ■

लहसुन गांठ तोड़ने वाला उपकरण

लहसुन की बुआई के लिए रोपण सामग्री इनकी कली (क्लोव) होती है। इन कलियों को हाथ से या लकड़ी द्वारा गांठ से अलग करते हैं। यह पारंपरिक विधि बहुत समय लेने वाली होती है तथा इसमें श्रम लागत भी अधिक लगती है। इस कार्य को बल्ब ब्रेकर मशीन द्वारा आसानी से कर सकते हैं। इस मशीन के संचालन के लिए सर्वप्रथम लहसुन को हॉपर में भरा जाता है। इसके बाद लहसुन की गांठ को दो घूमते हुए ड्रमों के मध्य से गुजारा जाता है, जिससे कलियां गांठ से पृथक हो जायें। एक ब्लोअर की सहायता से छिलकों को कलियों से अलग कर लिया जाता है। इस उपकरण द्वारा कलियों का उनके आकार के अनुसार पृथक्करण भी किया जाता है। यह उपकरण ट्रैक्टर अथवा विद्युत से चालित है। ट्रैक्टर तथा विद्युतचालित इस उपकरण की कार्य क्षमता क्रमश: 25-30 एवं 10-15 क्विंटल/घंटा होती है।

लहसुन की गांठ तोड़ने की मशीन

उपयोग

ताजे करी पत्तों का महत्व दक्षिण-पूर्व एशिया के व्यंजनों में मसाले के रूप में है। ये सबसे व्यापक रूप से दक्षिण और पश्चिमी तट के भारतीय व्यंजनों को पकाने में उपयोग किए जाते हैं। आमतौर पर तैयारी के पहले चरण में वनस्पति तेल, सरसों और कटे हुए प्याज के साथ करी पत्ते को तला जाता है। उनका उपयोग थोरन, वड़ा, रसम और करी बनाने के लिए भी किया जाता है। कम्बोडिया में इसकी पत्तियों को भूना जाता है और सूप में एक घटक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। जावा में पत्तों को अक्सर स्वाद गुलई में सुखाया जाता है। करी पत्तों का तेल निकाला जा सकता है और सुगंधित साबुन बनाने के लिए उपयोग में लिया जा सकता है।

लाभकारी व्यवसाय है करी पत्ता की खेती

कर्म बीर*, अंजीत कुमार*, प्रवीण जाखड़*, जी.बी. नाइक* और **एम. मधु***

करी पत्ता के पौधे का उपयोग मृदा एवं जल संरक्षण में भी बहुतायत से किया जा सकता है। इसका आकार छोटा होने के कारण इसे जैवीय बाड़े (लाइव फेंस) के रूप में किसानों द्वारा उपयोग किया जा सकता है। वानस्पतिक अवरोध के रूप में करी पत्ता को अनन्नास व नीबू घास के साथ प्रयोग करके मृदा अपरदन एवं मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। इस प्रकार से यह जनजातीय इलाकों में प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने तथा आदिवासी किसानों के स्वास्थ्य एवं आजीविका के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। करी पत्ता का वैज्ञानिक नाम: मुराया कोएनिजी है। इसके अन्य नाम: बर्गेरा कोएनिजी, चल्कास कोएनिजी हैं। यह एक प्रकार का उष्णकटिबंधीय तथा उप-उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाया जाने वाला रूटेसी वंश का पौधा है, जिसका मूल निवास स्थान भारत है।

करी पत्ता बहुत ही लाभप्रद और औषधीय गुणों से परिपूर्ण अर्ध-पर्णपाती सुगंधित झाड़ी है जिसमें, पतले लेकिन मजबूत लकड़ी के तने और गहरे भूरे रंग की छाल से ढकी शाखाएं होती हैं। इसकी पत्तियां गहरी हरी, चमकीली और बहुत ही तीव्र सुगंध वाली होती हैं। करी पत्ता तटवर्ती वनस्पतियों में से एक है, जो कि वन सीमा, अशांत वर्षा वनों, शहरी झाड़ियों, अवरूद्ध क्षेत्रों और बगीचों में बहुतायत से पाया जाता है। यह पेड़ एक बड़ी झाड़ी या छोटे वृक्ष के रूप में आमतौर पर 2.5-4 मीटर लंबा होता है, लेकिन कभी-कभी 6 मीटर तक की ऊंचाई भी प्राप्त कर सकता है। इसका मुख्य तना लगभग काले रंग का और छोटे सफेद बिंदुओं के आवरण में ढका होता है। इसके वैकल्पिक रूप से व्यवस्थित पत्ते (12-20 सें.मी.) लंबे होते हैं और जिसमें 7-31 पत्रक हो सकते हैं। ऐसी मान्यता है कि इन पत्तियों को कुचलने पर एक तीव्र करी जैसी महक आती है। इसी कारण इस पौधे का नाम करी पत्ता रखा गया। करी पत्ता के फूल आकार में छोटे और सफेद रंग के (लगभग 10-12 मि.मी. के पार) शाखाओं के मुहानों पर बड़े समूहों में (जैसे कि टर्मिनल पैन्कल्स, कोरिअम्ब्स या सिम्स में) व्यवस्थित होते हैं, जिसमें 60-90 तक फूल हो सकते हैं। ये फूल छोटे डंठल (यानी पेडिकेल) पर होते हैं और इनमें 1 मि.मी. से कम लंबाई के पांच हरे रंग के छोटे फूल होते हैं। उनकी पांच सफेद पंखुड़ियां (5-8 मि.मी. लंबी) आकार में लंबी होती हैं। फूलों में दस पीले पुंकेसर (4-6 मि.मी. लंबे) और एक अंडाशय एक छोटी शैली (लगभग 4 मि.मी. लंबी) और गोल (यानी सिर के रूप का) क्षतचिन्ह (स्टिग्मा) होते हैं। आमतौर पर फूल वसंत और शुरूआती गर्मियों के दौरान लगते हैं। फल एक गोल (यानी उप गोलाकार) या अंडे के आकार के (यानी ओवॉइड) बेरी जैसे होते हैं, जो परिपक्व होते ही हरे से काले या नीले-काले रंग में बदल जाते हैं। ये फल (10-16 मि.मी. लंबे और 10-12 मि.मी. चौड़े) दिखने में चमकदार होते हैं और इनमें एक या दो हरे बीज (11 मि.मी. तक लंबे और 8 मि.मी. चौड़े) होते हैं। फल आमतौर पर गर्मियों के दौरान परिपक्व होते हैं। इसके छोटे-छोटे, चमकीले काले रंग के फल तो खाए जा सकते हैं, लेकिन इनके बीज विषैले होते हैं।

*भाकअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसंधान केंद्र, सुनाबेड़ा, कोरापुट (ओडिशा)

औषधीय गुण

एक शोध के अनुसार प्रति सौ ग्राम करी पत्ते में 66.3 प्रतिशत नमी, 6.1 प्रतिशत प्रोटीन, एक प्रतिशत वसा, 16 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 6.4 प्रतिशत फाइबर और 4.2 प्रतिशत खनिज पाया जाता है। इसमें कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन और विटामिन 'सी' भी पाया जाता है। करी पत्ते का सेवन कई चिकित्सा स्थितियों और अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए फायदेमंद साबित हुआ है। इसके कई महत्वपूर्ण स्वास्थ्य लाभ होने के साथ-साथ यह भोजन को प्राकृतिक रूप से स्वादिष्ट बनाने का मसाला घटक है। करी

करी पत्ते के फल

करी की लोकप्रियता

करी पत्तों का बड़े पैमाने पर दक्षिण भारत और श्रीलंका में उपयोग किया जाता है (और प्रामाणिक स्वाद के लिए बिल्कुल आवश्यक भी है), लेकिन उत्तर भारत में इसका कुछ अलग महत्व भी है। दक्षिण भारतीय प्रवासियों के साथ करी पत्ते का चलन मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका और रियूनियन द्वीप तक फैला हुआ है।

पत्ते भोजन को सुखद और खुशबूदार बनाने के साथ-साथ इसको पौष्टिक और स्वादिष्ट भी बनाते हैं। इनमें विभिन्न ऑक्सीकरणरोधी (एंटीऑक्सीडेंट) गुण होते हैं और दस्त, जठरांत्र (गैस्ट्रोइंटेस्टाइनल) की समस्याओं जैसे-अपच, अत्यधिक अम्लीय स्राव, पेप्टिक अल्सर, पेचिश, मधुमेह और एक अस्वास्थ्यकर कोलेस्ट्रॉल संतुलन को नियंत्रित करने की दक्षता रखते हैं। यह भी पाया गया है कि इसमें कैंसररोधी गुण विद्यमान होते हैं और यह यकृत या लीवर की रक्षा करने के लिए जाना जाता है। इच्छित उपयोग के आधार पर पत्तियों को सुखाया या तला जा सकता है। ताजा रूप भी खाना पकाने और हर्बल दवाओं दोनों के लिए बहुत लोकप्रिय है। आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी करी पत्ते में कई औषधीय गुण पाए जाते हैं। ये एंटी-डायबीटिक, एंटीऑक्सीडेंट, रोगाणुरोधी (एंटीमाइक्रोबियल), एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटी-कार्सिनोजेनिक और हेपेटोप्रोटेक्टिव (लीवर को नुकसान से बचाने की क्षमता) गुणों से युक्त हैं। करी पत्ता की जड़ें शरीर के दर्द के इलाज के लिए उपयोग की जाती हैं और छाल का उपयोग सांप के काटने से उत्पन्न दर्द और विष के दुष्प्रभाव से राहत के लिए किया जाता है। इसके धुले हुए पत्तों को खाने से उल्टी बंद हो जाती है। करी पत्ते का उपयोग कैल्शियम की कमी में भी किया जाता है। इसके पोषण मूल्य से युवा और वृद्ध दोनों वर्गों को समान रूप से लाभ होता है, जो महिलाएं कैल्शियम की कमी, ऑस्टियोपोरोसिस आदि से पीड़ित हैं, वे करी पत्ते को एक आदर्श और प्राकृतिक रूप से कैल्शियम पूरक के रूप में पा सकती हैं। नीबू के रस और चीनी के साथ करी पत्ते का ताजा रस, अपच और वसा के अत्यधिक उपयोग के कारण सुबह के रोग, मिचली और उल्टी के उपचार में एक प्रभावी दवा भी है।

करी पत्ते को महीन पीस कर छाछ के साथ मिश्रित करके खाली पेट भी लिया जा सकता है, जो कि पेट में हो रहे उतार-चढ़ाव के मामले में लाभकारी परिणाम देता है। यह एक लैक्सेटिव के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। गर्मियों के दौरान त्वचा पर फोड़े-फुंसी दिखाई देते हैं। अधिकांश फोड़े समय के साथ कम हो जाते हैं, लेकिन कुछ बने रह सकते हैं और दर्दनाक हो सकते हैं। इस तरह की स्थितियों के इलाज में करी पत्ते काम आते हैं। जल्दी राहत के लिए करी पत्ते से बना पेस्ट लगाया जाता है। पुदीना और धनिया पत्ती के साथ करी पत्ता का उपयोग अत्यधिक पित्त के इलाज में किया जा सकता है। इसका उपयोग जलने, खरोंच और त्वचा के फटने के इलाज के लिए प्रभावी है। करी पत्ते के ताजा रस का उपयोग करके मोतियाबिंद के विकास को रोका जा सकता है। इसकी जड़ के रस के उपयोग से गुर्दे के दर्द को ठीक किया जा सकता है।

करी पत्ते का पोषक महत्व

पोषक तत्व

करी पत्तों में पाए जाने वाले मुख्य पोषक तत्व कार्बोहाइड्रेट (सूक्ष्म मात्रा में), फाइबर, कैल्शियम, फॉस्फोरस, लोहा, मैग्नीशियम, तांबा और खनिज हैं। इसमें विभिन्न विटामिन जैसे-निकोटिनिक एसिड, एंटीऑक्सीडेंट, अमीनो एसिड, ग्लाइकोसाइड और फ्लेवोनोइड भी शामिल हैं। इसके साथ ही इसमें वसा लगभग 0.1 ग्राम प्रति 100 ग्राम पाया जाता है। करी पत्ते में मौजूद अन्य रासायनिक घटक कार्बोजल एल्क्लॉइड हैं। बालों की उचित वृद्धि के लिए पोषक तत्वों के स्रोत के लिए यह एक उत्कृष्ट माध्यम है। करी पत्ते के नियमित सेवन से बाल मजबूत होते हैं, रूसी ठीक होती है और बालों का असमय सफेद होना रुक जाता है। इसमें विटामिन 'ए', विटामिन 'बी', विटामिन 'सी', विटामिन बी2, कैल्शियम और लौह प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि करी पत्ता में एलडीएल कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने की क्षमता होती है।

मृदा एवं जल संरक्षण में करी पत्ते का महत्व

करी पत्ते के पौधे का उपयोग मृदा एवं जल संरक्षण में भी बहुतायत से किया जा सकता है। पेड़ का आकार छोटा होने के कारण जैवीय बाड़े के रूप में किसानों द्वारा इसका उपयोग किया जा सकता है। वानस्पतिक अवरोध के रूप में अनन्नास व नीबू घास के साथ प्रयोग करके मृदा अपरदन एवं मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। इस प्रकार से करी पत्ता जनजातीय इलाकों में प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षण करने तथा आदिवासी किसानों के स्वास्थ्य एवं आजीविका के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। करी पत्ते का मृदा एवं जल संरक्षण से संबंधित अनुसंधान बहुत सीमित है। इस प्रकार के औषधीय पौधों को प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में अधिक प्रयोग करने की जरूरत है। ■

कद्दू में कीट प्रबंधन

दिनेश कच्छावा*

सब्जियों की खेती में कद्दू का प्रमुख स्थान है। इसकी उत्पादकता और पोषक महत्व अधिक है। कद्दू औषधीय दृष्टि से बड़ा गुणकारी है। इसके सेवन से गठिया रोग, पेट एवं मूत्र विकारों में लाभ होता है। इसलिए यह सबसे अधिक स्वास्थ्य लाभकारक माना गया है। कद्दू का उत्पादन अच्छा होता है, परन्तु बहुत से कीट एवं व्याधियां इसके उत्पादन को प्रभावित करते हैं। कभी-कभी उचित प्रबंधन के अभाव में कीटों के प्रकोप से पूरी फसल नष्ट हो जाती है और किसानों को काफी हानि उठानी पड़ती है। ऐसे में कद्दू में लगने वाले कीटों व रोगों का उचित समय पर उपयुक्त प्रबंधन करना आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में कद्दू की फसल में लगने वाले प्रमुख कीटों और उनकी रोकथाम के उपायों को बताया गया है।

फल मक्खी

यह कीट कद्दूवर्गीय फसलों का महत्वपूर्ण कीट है। इसकी मादा नरम फलों में सफेद रंग के अंडे गुच्छों में देती है। फल मक्खी के मैगट फल के आंतरिक ऊतकों में टेढ़ी-मेढ़ी सुरंग बनाकर फल को अंदर से खाते हैं, जिससे फल पीले पड़कर सड़ जाते हैं और समय से पहले गिर जाते हैं। इस कीट को नियंत्रित करना बहुत मुश्किल है क्योंकि इनके मैगट फल के अंदर रहकर फलों को नुकसान पहुंचाते हैं।

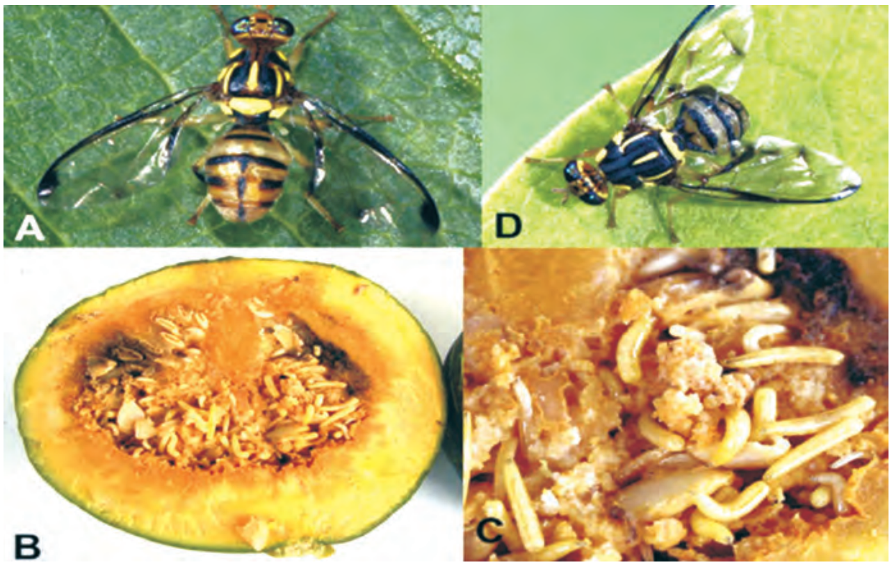

फल मक्खी से संक्रमित कद्दू का फल

*कीट विज्ञान विभाग, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

लाल पम्पकिन बीटल

यह कद्दू का काफी हानिकारक कीट है। इसके वयस्क लाल रंग के होते हैं और मादा पीले रंग के अंडे अकेले या 8 व 9

फलमक्खी

लाल पम्पकिन बीटल

वयस्क कद्दू कैटलपिलर

कद्दू कैटरपिलर की सूंडी

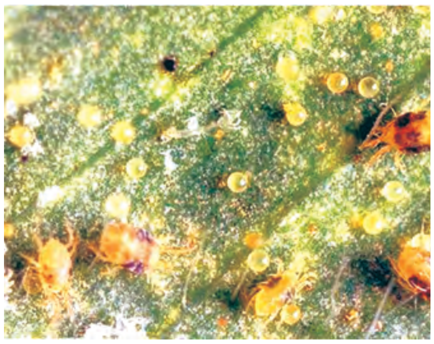

लाल मकड़ी कुटकी का संक्रमण

के समूह में नम मृदा में देती है। इस कीट का जीवनचक्र 26–37 दिनों में पूरा हो जाता है। इसकी लार्वा और वयस्क दोनों अवस्थाएं पौधों को नुकसान पहुंचाती हैं। वयस्क भृंग जमीन के ऊपर पौधों के पत्ते, फल व फूलों पर आक्रमण करके छेदकर देती हैं, जिससे पौधों का विकास रुक जाता है और पौधा मर जाता है। इसका लार्वा मृदा में रहकर जड़ों में रेंगने वाले भूमिगत तने और मृदा के संपर्क में आने वाले फलों को खाता है।

कद्दू कैटरपिलर

इस कीट के पंख सफेद पारदर्शी होते हैं, जिनके किनारे भूरे रंग के होते हैं। मादा कीट पत्तियों की निचली सतह पर अकेले या समूह में अंडे देती है। कद्दू कैटरपिलर की सूंडी हरे रंग की होती है, जिसकी ऊपरी सतह पर सफेद धारियां होती हैं। इसकी प्यूपा अवस्था कोकून के रूप में फूलों में व्यतीत होती है। लार्वा पत्तियों में जाले बनाकर पत्तियों को खाता है। इसके साथ ही साथ ये विकासशील फलों व फूलों के अंडाशय को खाते हैं। प्रभावित फूल, फल में परिवर्तित नहीं हो पाता तथा फल खाने योग्य नहीं रहते।

लाल मकड़ी

यह कीट पत्तियों की दोनों सतह और फूलों पर पाया जाता है। इसके युवा और वयस्क पौधों व पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियां पीली व भूरी पड़कर सूखकर गिर जाती हैं।

सफेद मक्खी

इस कीट के निम्फ और वयस्क मुख्य रूप से पौधों के रस को पत्तियों के नीचे से चूसते हैं और मधुरस स्रावित करते हैं। इससे पत्ती के ऊपर काली फफूंद विकसित हो जाती है, जिसके कारण पौधों द्वारा प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है। भक्षण द्वारा हुए प्रत्यक्ष नुकसान के अलावा सफेद मक्खी वायरल रोगों के जनक के रूप में भी काम करती है।

समन्वित कीट प्रबंधन

- प्रभावित फलों व पत्तियों को एकत्र करके जमीन में गाड़ देना चाहिए।
- बुआई की तारीख बदलकर भी फल मक्खी के प्रकोप को कम कर सकते हैं।
- अक्टूबर–नवंबर में अगेती बुआई करके लाल पम्पकिन बीटल के नुकसान से पौधों को बचा सकते हैं।
- पौधों के नीचे की मृदा को औजारों की सहायता से उलट–पुलट देना चाहिए, जिससे मृदा में उपस्थित अंडे, लार्वा और प्यूपा नष्ट हो सकें।
- जाल फसल के रूप में लौकी की फसल का प्रयोग करना चाहिए।
- फल मक्खी के प्यूपा व परजीवियों को धूप में लाने के लिए मृदा को समतल करें।
- फल मक्खी के प्रबंधन के लिए पीले रंग के चिपचिपे ट्रैप को 10 प्रति एकड़ की दर से स्थापित करें।
- नीम 300 पीपीएम का 10 मि.ली. प्रति लीटर की दर से लाल पम्पकिन बीटल के लिए फसल की प्रारंभिक अवस्था में 2 बार छिड़काव करें।
- फल मक्खी के बड़े क्षेत्र में प्रबंधन के लिए क्यूल्योर 10 प्रति एकड़ की दर से स्थापित करें। लकड़ी के छोटे टुकड़े को इथनोल : क्यूल्योर : कीटनाशी (डीडीवीपी) 8:2:1 के अनुपात के घोल में 48 घंटे तक डुबोयें।

- लाल पम्पकिन बीटल के प्रबंधन के लिए डीडीवीपी 76 ईसी का 500 ग्राम सत प्रति हैक्टर अथवा ट्राइक्लोरफॉन 50 ईसी का 1.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से आवश्यकता अनुसार छिड़काव करें।
- मकड़ी कुटकी के प्रबंधन के लिए डाइकोफोल 18.5 एससी का 1.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
- सफेद मक्खी एवं लाल पम्पकिन बीटल के लिए साइएंट्रानीलीप्रोल 10.8 ओडी का 900 मि.ली. प्रति हैक्टर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

औषधीय फसलों में रोग और कीट प्रबंधन

राम प्रसन्न मीना* और **बृजेश कुमार मिश्र***

वर्तमान में पौध आधारित दवाओं, स्वास्थ्य उत्पादों, फार्मास्यूटिकल्स, आहार और सौंदर्य प्रसाधनों के लिए औषधीय एवं सगंधीय पौधों की मांग बढ़ी है। हर्बल कच्चे माल की गुणवत्ता, रोगों के प्रति उनकी प्रभावशीलता और लाभप्रदता प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है। रोग और कीट, फसल की उत्पादन में बाधा उत्पन्न करते हैं। ये फसल से प्रत्येक स्तर पर औषधीय और सगंधीय पौधे की गुणवत्ता और मात्रा को प्रभावित करते हैं। इसलिए इन फसलों को रोगों और कीटों से बचाने के लिए अधिक देखभाल और सतर्क रहने की आवश्यकता होती है। अन्य फसलों की तरह इनमें रासायनिक कवकनाशी और कीटनाशकों की सिफारिश नहीं की जाती है। अच्छी कृषि पद्धतियों के तहत उपयुक्त पौध संरक्षण पद्धतियों के बाद किए जाने वाले कीट प्रबंधन के उपाय सख्त नियमों के साथ, यदि आवश्यक हो, तो रसायनों का सुरक्षित उपयोग अनुशंसित है। रोगरोधी वनस्पति उत्पादों और जैव नियंत्रण एजेंटों का उपयोग हानिकारक रोगाणुओं के खिलाफ किया जाता है। इसके लिए कृषि में एक परिवर्तन की आवश्यकता है और गुणवत्ता मानकों को सुनिश्चित करते हुए औषधीय एवं सगंधीय पौधे की व्यावसायिक खेती निश्चित रूप से 'सभी के लिए स्वास्थ्य' के लक्ष्य को पूरा करेगी।

रोपण बीज के लिए अनुपयोगी रोगग्रस्त सफेद मूसली व शतावरी की वानस्पतिक जड़ें

पादप रोग और कीट विभिन्न प्रकार से फसलों के उत्पादन को भारी नुकसान पहुंचाते हैं। दुनिया भर के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में फसलों में नुकसान की मात्रा भी अलग-अलग होती है, लेकिन कुल मिलाकर किसानों को काफी आर्थिक नुकसान होता है। ये रोग और कीट खेत उत्पाद के स्वरूपात्मक मूल्य को भी कम कर देते हैं। अनाज, सब्जी और फलों की फसलों में रोग और कीटों को विभिन्न नियंत्रण उपायों के साथ अच्छी तरह से प्रलेखित किया गया है। औषधीय फसलों में इस भाग की कमी है या प्रबंधन रणनीतियों पर बहुत कम जानकारी उपलब्ध है।

भारत में लगभग 80 प्रतिशत आबादी सीमांत खेतीहर है और स्वास्थ्य की देखभाल के लिए पारंपरिक आयुर्वेद प्रणाली पर निर्भर है। देश की विविध जलवायु और पारिस्थितिक परिस्थितियां वित्तीय स्थिति के साथ-साथ स्वास्थ्य प्रणाली को मजबूत करने के लिए व्यावसायिक खेती को बढ़ाने का एक व्यापक अवसर प्रदान करती हैं। ये फसलें उपलब्ध संसाधनों के अनुसार चयन करने के लिए व्यापक अवसर प्रदान करती हैं और इनमें से कई फसलों को देखभाल, उर्वरक और सिंचाई के लिए पानी की न्यूनतम आवश्यकता होती है। विश्व स्तर पर औषधीय और सगंधीय पौधे सार्वजनिक स्वास्थ्य देखभाल में महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका के कारण दिन-प्रतिदिन आवश्यक हो रहे हैं। पिछले एक दशक के दौरान, औषधीय पौधों और इनके उत्पादों की मांग में वृद्धि हुई है।

अभी तक जंगल ही इन कच्ची हर्बल दवाओं के प्रमुख और प्राथमिक स्रोत रहे हैं। इसके लिए दोहन और दोषपूर्ण संग्रहक्रियाओं का पालन किया जाता है। लेकिन धीरे-धीरे

*भाकृअनुप-औषधीय एवं सगंधीय पादप अनुसंधान निदेशालय, बोरीआवी, आणंद, (गुजरात)

ये दबाव हटाने के लिए तथा प्रतिबंधित वन क्षेत्रों से आपूर्ति रोकने के लिए औषधीय पौधों को घरेलू खेती के तहत लाया गया है।

औषधीय और सगंधीय पौधे की खेती में कई चुनौतियां हैं, लेकिन सबसे कठिन काम रोगों और कीटों से बचाव है। उपज को कम करने के लिए जिम्मेदार ये जैविक कारक उत्पादन की गुणवत्ता को भी बिगाड़ते हैं, जो सीधे मौद्रिक आय (रिटर्न) को प्रभावित करते हैं। अनाज, सब्जियों और फलों की फसलों में अधिकांश रोग और कीट प्रबंधन रणनीतियों में अकार्बनिक/रासायनिक आधारित फार्मूलों (कवकनाशी और कीटनाशकों) का उपयोग किया गया है। औषधीय और सगंधीय पौधे के कच्चे माल का उपयोग आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है या कई पारंपरिक फार्मूलों में सीधे खपत की जाती है। इसलिए कवकनाशी और कीटनाशकों के प्रयोग की सिफारिश नहीं की जाती है, क्योंकि कच्चे माल में इन फार्मूलों के अवशेष स्वास्थ्य के खतरों का कारण बन सकते हैं तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में निर्यात क्षमता को भी प्रभावित कर सकते हैं।

बीज और रोपण सामग्री

खेती के उद्देश्य के लिए चुनी गई बीज और रोपण सामग्री को निष्क्रिय पदार्थ (खरपतवारों के बीज), रोगों और कीटों से मुक्त होना चाहिए, ताकि इन्हें फैलने से रोका जा सके। कई औषधीय और सगंधीय पौधे की खेती वनस्पति प्रवर्धन से की जाती है और ये रोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं। इसके अलावा बीज ताजा होना चाहिए, स्वस्थ मातृ, पौधों से सही अवस्था में इकट्ठा किया जाना चाहिए। बीज उपचार प्रक्रिया को विशुद्ध निर्धारित बीज उपचार प्रोटोकॉल के बाद माना जा सकता है। इस तरह के अनुप्रयोग एक अवधि के लिए अंकुरण से पहले और इस दौरान बीज की रक्षा करते हैं। मृदा अनुप्रयोग में ट्राइकोडर्मा से उपचारित अच्छी तरह से विघटित गोबर की खाद का मृदा अनुप्रयोग या 0.02 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के साथ रूट डिप उपचार ग्वारपाठा में मृदु सड़न रोग तथा उकठा रोग को कम करता है।

गलत रखरखाव के कारण फल और बीज

वैकल्पिक फसल प्रणाली

मौजूदा फसल प्रणाली में औषधीय और सगंधीय पौधों का एकीकरण और समावेश छोटे और सीमांत किसानों की आय में बढ़ोतरी के लिए सबसे महत्वपूर्ण और आशाजनक हस्तक्षेप है। इसके अलावा, वैकल्पिक फसल प्रणाली में गैर-पोषित फसल भी विशिष्ट रोगों और कीटों की घटनाओं को कम करती है। इसबगोल, डाउनी मिल्ड्यू (पेरोनोसपोरा प्लांटैगिनिस) के लिए विशिष्ट पोषिता है।

खेती की तकनीक

नियंत्रित जलवायु वाली हाईटेक नर्सरी को औषधीय और सगंधीय पौधों की उच्च गुणवत्ता वाली रोगमुक्त रोपण सामग्री के उत्पादन और आपूर्ति के लिए नियोजित किया जा सकता है। आधुनिक विकसित तकनीकियों का उपयोग करके फसलों में कीटों एवं रोगों की घटनाओं के जोखिम को काफी कम किया जा सकता है। तुलसी और कालमेघ प्रजाति के लिए रेज्ड सीड बेड तकनीक और अश्वगंधा, सफेद मूसली और

फूलों पर फंगस का संक्रमण

भूस्थल और फसल का चयन

उच्चतर सतह व अच्छे जल निकास वाली जमीन पर शतावरी

औषधीय फसल की खेती के लिए उत्पादन स्थल की उपयुक्तता मृदा के रासायनिक और भौतिक गुणों, उपलब्ध संसाधनों और भौगोलिक अध्ययन के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए। उत्पादन स्थलों की पर्यावरणीय स्थिति भी फसल प्रजातियों की प्रासंगिकता की पुष्टि करती है। जल जमाव वाले निचले क्षेत्र जड़जनित औषधीय फसलों के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं जैसे-अश्वगंधा, शतावरी, सफेद मूसली आदि। यह स्थिति या जड़गलन, गलन और तनासड़न रोगों को आमंत्रित करती है। इसके अलावा बारिश के मौसम के दौरान नमी और जल जमाव स्थिति के तहत ग्वारपाठा में मृदुसड़न रोग का प्रकोप अधिक होता है। इसलिए हमें ऐसी फसलों के लिए इन स्थानों से बचना चाहिए। इसके अलावा उन फसलों का चयन करना चाहिए, जिन्हें ऐसे क्षेत्रों में संरक्षण के लिए बहुत अधिक आदान के बिना सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है, जैसे-ब्राह्मी, मंडुकपर्णी (सेंटेला असिटिका) आदि। जैविक तनाव की कम आशंका और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के तहत औषधीय और सगंधीय पौधे खेती के दायरे को व्यापक बनाते हैं। ग्वारपाठा, अश्वगंधा और इसबगोल शुष्क क्षेत्र में तथा पथरीली मृदा की स्थिति में गुग्गल की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। लाभकारी सूक्ष्मजीव का उपयोग उत्पादन स्थलों के आंतरिक या बाहरी पारिस्थितिक अवसंरचना में सुधार के लिए किया जा सकता है।

ग्वारपाठा में अच्छी जल निकासी की सुविधा भी सीडलिंग रॉट, डैंपिंग ऑफ आदि रोगों को कम करते हैं। इसबगोल के अतिसंवेदनशील चरण में फफूंदी रोग लगने को फसल की पूर्व बुआई से बचाया जा सकता है। देर से बोई गई फसल में रोग और एफिड संक्रमण का खतरा ज्यादा होता है। क्षेत्र स्वच्छता एक रोग को नियंत्रित करने के लिए और कीटों को एक से दूसरी पीढ़ी तक नियंत्रित करने के उपायों में से एक है।

खेती के लिए प्रतिरोधी स्रोतों का उपयोग

औषधीय और सगंधीय पादप उद्योग में गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री की अपर्याप्त उपलब्धता इनके विकास में महत्वपूर्ण बाधित कारकों में से एक है। प्रमाणित/प्रमाणिक रोगमुक्त बीज सामग्री प्राप्त करने के लिए किसानों की पहुंच नहीं है और फलस्वरूप उत्पादन, उत्पादकता और गुणवत्ता का नुकसान होता है। बीज उत्पादक को गुणवत्तापूर्ण बीज उत्पादन के लिए सभी आवश्यक क्रियाओं और मापदंडों का पालन करना चाहिए। हाल ही में कुछ उन्नत स्रोत जैसे-वल्लभ मेधा (मांडुकपर्णी) व वल्लभ इसबगोल-1 (इसबगोल) को डाउनी मिल्ड्यू के लिए औसत प्रतिरोध आशाजनक पादप के रूप में पहचाना गया है, जिनकी बीज शृंखला प्रणाली के माध्यम से किसानों को आपूर्ति की जा सकती है।

पौधों की सुरक्षा के उपाय

अच्छे पौध संरक्षण का संबंध पौध संरक्षण उत्पाद से है, जिसमें सामान्य रूप से माइक्रोबियल सूत्रीकरण, प्राकृतिक शत्रु और रसायनों (फफूंदनाशी एवं कीटनाशी) का न्यायिक उपयोग शामिल है। पौध संरक्षण पद्धति में पंजीकृत उत्पाद प्राकृतिक दुश्मनों से फसल की रक्षा करते हैं तथा इसका प्रयोगात्मक सबूत होना चाहिए कि नियंत्रण के जैविक साधनों में स्वीकार्य प्रभावकारिता उपलब्ध है। रासायनिक नियंत्रकों से फसलों में पहले से मौजूद लाभकारी माइक्रोबियल आबादी पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए। रसायनों का उपयोग बीज या वानस्पतिक पौधे के प्रसार को कीटाणुरहित करने के लिए किया जा सकता है, जो रोगों और कीटों के प्रसार को रोकते हैं। संतुलित नाइट्रोजन उर्वरकों और सिंचाई के उपयोग से कुछ पर्ण रोगों की गंभीरता भी रोकी जा सकती है। ट्राइकोडर्मा प्रजातियों का मृदा में अनुप्रयोग, बेसिलस सबटिलिस व स्यूडोमोनस फ्ल्यूरोसेंस का फोलियर अनुप्रयोग, रोग प्रबंधन के लिए अनुशंसित किया जाता है। कई फसलों में कीटों के नियंत्रण के लिए ट्राइकोग्रामा, अपिलीनस मैली, बेवेरिया बैसियाना, मेथेरिजियम एनिसोप्लाए का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। रोगों और कीटों के प्रबंधन के लिए वनस्पति अर्क और अन्य जैविक स्रोतों की खोज की गई है। नीम आधारित सूत्रीकरण को रोगों और कीटों के प्रति काफी प्रभावी बताया गया है।

अश्वगंधा की स्वस्थ फसल

कटाई उपरांत प्रबंधन

किसी भी हर्बल फार्मुलेशन के लिए पौधे के कच्चे भाग (जड़, जड़ की छाल, तना, तने की छाल, पत्ती, फूल, फल, बीज, पूरे पौधे और किसी भी भाग के संयोजन) का उपयोग किया जाता है, जबकि अर्क और सक्रिय सिद्धांत विभिन्न सूत्रीकरण (फार्मुलेशन) में उपयोग किए जाते हैं। विशेष रूप से क्रियात्मक अवस्था में फसल की कटाई और कटाई के बाद के प्रबंधन से हर्बल उत्पादन और सक्रिय सिद्धांतों की गुणवत्ता अत्यधिक प्रभावित होती है। सुखाने की प्रक्रिया, उच्च नमी, अस्वच्छ भंडारण स्थिति और अन्य तरीकों में संग्रहित उपज में कवक और बैक्टीरिया का संक्रमण गंभीर गुणवत्ता नुकसान का कारण बनता है।

इसलिए, सर्वोत्तम अवस्था में फसल की कटाई आवश्यक है। आपूर्ति शृंखला की प्रत्येक अवस्था में फसल कटाई के बाद के नुकसान को उचित कटाई के तरीकों, तकनीक प्रबंधन, उपज के एकत्रीकरण और फिर परिवहन में उपयोग करके कम किया जा सकता है। सुखाने की मानकीकृत प्रक्रिया और भंडारण की स्थिति भी गुणवत्ता बनाए रखने के साथ-साथ फसल उत्पादों से उच्च लाभ प्राप्त करने में मदद करती है। औषधीय और सगंधीय पौधों में उत्पादन के प्रत्येक चरण में पूर्ण देखभाल की आवश्यकता होती है, लेकिन फसल कटाई प्रबंधन बहुत महत्वपूर्ण है।

कृषि वानिकी के तहत औषधीय और सगंधीय पौधे

बहुत से औषधीय और सगंधीय पौधे जंगल में पेड़ों के नीचे उग जाते हैं और ये छाया पसंद पेड़-पौधे कृषि बागवानी फसल प्रणाली में आसानी से प्रस्तावित किए जा सकते हैं। कृषि वानिकी और कृषि बागवानी प्रणाली में औषधीय और सगंधीय पौधे की खेती जंगली पशुओं से संरक्षण को बढ़ावा देने के साथ एक सुविधाजनक रणनीति प्रदान करती है। फलों के बाग (आम, अमरूद और चीकू) के लिए तुलसी (ऑसिमम सेंक्ट्म) महत्वपूर्ण फसल है, जो कई कीटों विशेष रूप से फल मक्खियों से बचाव में एक आकर्षक फसल के रूप में कार्य करती हैं। जंगली पशु जैसे-बंदर, खरगोश, जंगली सूअर आदि सब्जियों और खाद्य फसलों में नुकसान का कारण बनते हैं। कुछ औषधीय और सगंधीय पौधे स्वाद में अत्यधिक कड़वे होते हैं (एंड्रोग्राफिस पैनिकुलेटा, अधातोडा वसाका)। इनका उपयोग सीमावर्ती फसल के रूप में किया जा सकता है, जो पशुओं को दूर रखें और आर्थिक नुकसान को कम करते हैं।

रबी सौंफ की खेती

साबले पी.ए.*, पुष्पराज सिंह** और **सुषमा सोनपुरे*****

भारत में सौंफ एक महत्वपूर्ण मसाला फसल है। देश में इसकी फसल लगभग 66 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में ली जाती है और उसमें से 104 हजार मीट्रिक टन उत्पादन दर्ज किया गया है (बागवानी सांख्यिकी, 2018)। देश में गुजरात राज्य का सौंफ उत्पादन में प्रथम स्थान है (45,400 हैक्टर क्षेत्रफल एवं 96,770 मीट्रिक टन उत्पादन के साथ)। राजस्थान 27,590 हैक्टर क्षेत्रफल एवं 30,720 मीट्रिक टन उत्पादन के साथ दूसरे स्थान पर है (मसाला बोर्ड भारत, वर्ष 2015-16)

सरदार कृषि नगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय के बीजीय मसाला फसल अनुसंधान केंद्र से विकसित गुजरात सौंफ-11, गुजरात सौंफ-12, गुजरात सौंफ-2 उन्नत प्रजातियां मानी जाती हैं।

बुआई एवं फसल प्रबंधन

बुआई

गुजरात और राजस्थान में सौंफ एक महत्वपूर्ण फसल है। इसकी खेती खरीफ एवं रबी दोनों ही मौसमों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। खरीफ में सौंफ की खेती में अत्यधिक वर्षा के कारण फसल के खराब होने की आशंका रहती है। रबी मौसम इसकी खेती के लिए उत्तम माना जाता है। इस मौसम में कीटों अथवा रोगों का प्रकोप कम होता है एवं वर्षा के कारण फसल खराब होने का खतरा नहीं होता है तथा खरीफ की अपेक्षा उत्पादन में भी वृद्धि होती है।

नगदी फसल सौंफ

बुआई का समय

खरीफ: जून-जुलाई

रबी: अक्टूबर के आखिरी सप्ताह से नवंबर के प्रथम सप्ताह तक।

*वैज्ञानिक, बागवानी, कृषि विज्ञान केंद्र, साबरकांठा; **वैज्ञानिक, बागवानी, कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विश्वविद्यालय, थराद, सरदार कृषिनगर दांतीवाड़ा (गुजरात); ***आचार्य कृषि विभाग, महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुरी (महाराष्ट्र)

खाद एवं सिंचाई

उत्तरी गुजरात के लिए रबी सौंफ फसल के लिए कार्यक्षम खाद एवं जल नियंत्रण बहुत महत्वपूर्ण हैं। अधिक उत्पादन एवं लाभ के लिए किसानों को सलाह दी जाती है कि सौंफ की फसल के लिए खाद प्रबंधन में 90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर देनी चाहिये। नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फॉस्फोरस एवं पोटाश की संपूर्ण मात्रा बुआई के समय ही खेत में मिला देनी चाहिये। शेष नाइट्रोजन की मात्रा बुआई के बाद 30 एवं 60 दिनों बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में सिंचाई के साथ देनी चाहिये। मसाला अनुसंधान केंद्र, जगुदन के अनुसार नाइट्रोजन 90 कि.ग्रा. और फॉस्फोरस 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दिया जाना चाहिये।

सौंफ की तैयार फसल

बीज दर: 4-5 कि.ग्रा./हैक्टर (मसाला फसल अनुसंधान केंद्र, जगुदन)

बीज उपचार: बीज बुआई से पहले फफूंदनाशक दवा (कार्बेन्डाजिम अथवा कैप्टॉन 2.5 से 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से उपचारित करें (लगभग 8 घंटे)। इसके अलावा सौंफ के बीज को ट्राइकोडर्मा (जैविक फफूंदनाशक 8-10 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज) से भी उपचारित किया जा सकता है (भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीजीय मसाला फसल अनुसंधान केंद्र, अजमेर, राजस्थान)

बुआई की विधि

गुजरात के किसान सौंफ की बुआई सामान्यत: छिटक कर करते हैं। परन्तु इस विधि से बुआई करने पर अच्छा उत्पादन नहीं मिल पाता। सरदार कृषि नगर दांतीवाड़ा कृषि विश्वविद्यालय के बीजीय मसाला फसल अनुसंधान केंद्र, जगुदन में हुए अनुसंधान के अनुसार यदि किसान इसकी बुआई पंक्ति में करें, तो उत्पादन में वृद्धि होती है। सौंफ की पंक्ति में बुआई करने के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 90 सें.मी. एवं पौध से पौध की दूरी 60 सें.मी. उपयुक्त मानी गई है। भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीजीय मसाला फसल अनुसंधान केंद्र, अजमेर, राजस्थान द्वारा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 50-60 सें.मी. एवं पौध से पौध की दूरी 25-30 सें.मी. भी अनुशंसित है।

खरीफ के समय में बुआई के लिए मसाला फसल अनुसंधान केंद्र, जगुदन के द्वारा विकसित गुजरात सौंफ-2 की खेती करने वाले गुजरात के किसानों को सलाह दी जाती है कि कुल नाइट्रोजन की मात्रा (100 किलो) का 80 प्रतिशत भाग टपक पद्धति (फर्टिगेशन) द्वारा अथवा 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन + 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस बेसल डोज में बुआई के समय देना चाहिये। नाइट्रोजन की शेष मात्रा (64 किलो) चार बराबर हिस्सों में 30 दिनों के अंतराल में देनी चाहिये।

उत्तरी गुजरात में सौंफ की रबी फसल लेने वाले किसानों को सलाह दी जाती है कि बुआई के समय, बुआई के 8 दिनों और 33 दिनों में सिंचाई करनी चाहिए। शेष 7 सिंचाइयां 12 से 15 दिनों के अंतराल में की जानी चाहिए।

कार्यक्षम सिंचाई के लिए टपक सिंचाई पद्धति का इस्तेमाल जरूरी है। सौंफ की रबी की फसल में टपक पद्धति द्वारा सिंचाई करने के लिए 90 सें.मी. के अंतराल में दो लेटरल और 60 सें.मी. अंतराल के दो इमिटर, लगभग 1.2 कि.ग्रा./सें.मी. के दबाव वाली एवं 4 लीटर प्रति घंटा पानी के डिस्चार्ज का इस्तेमाल किया जा सकता है। टपक पद्धति द्वारा रबी सौंफ में सितंबर में 30 मिनट एवं अक्टूबर-नवंबर में 75 मिनट और दिसंबर से जनवरी में 50 मिनट 2 दिनों के अंतराल में सिंचाई करनी चाहिये।

व्यावसायिक महत्व सौंफ की फसल का

निवेदन

लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ ई-मेल पर ही भेजें। ध्यान रखें कि फोटो जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। भेजने के लिए कृपया कृतिदेव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा ई-मेल है :

khetidipa@gmail.com

—संपादक

सब्जी उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

प्रमिला*, उदित कुमार*, रमेश कुमार गुप्ता* और **एल.एम. यादव***

जलवायु परिवर्तन, औद्योगिकीकरण और बढ़ते वाहनों की संख्या के कारण ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में बढ़ोतरी हुई है। ग्रीनहाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से वैश्विक तापमान में वृद्धि एवं जलवायु परिवर्तन से समस्त विश्व चिंतित है। इसका सब्जी उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। सब्जियों को बीज अंकुरण से लेकर बीज उत्पादन तक भिन्न-भिन्न तापमान की आवश्यकता पड़ती है, जो बदलते मौसम के कारण सामान्यत: उपलब्ध नहीं हो रहा है और सब्जी उत्पादन प्रभावित हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से भारतीय कृषि को बचाने के लिए हमें अपने संसाधनों का न्यायसंगत प्रयोग करना होगा। इस बात की सख्त जरूरत है कि खेती में हम ऐसे पर्यावरण मित्र तरीकों को अहमियत दें, जो मृदा की उत्पादकता को बरकरार रख सकें और प्राकृतिक संसाधनों को बचा सकें।

असमय वर्षा का सब्जी उत्पादन पर प्रभाव

सामान्यत: खरीफ के मौसम में सब्जियों में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, लेकिन पिछले चार-पांच वर्षों से बरसात की फसल में भी सिंचाई की आवश्यकता पड़ रही है। यह जलवायु परिवर्तन का घोतक है। सब्जियां अधिक पानी के प्रति भी संवेदनशील होती हैं। अत: अधिक पानी से इन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। 16 घंटे से अधिक पानी यदि सब्जियों के खेत में लगा रहे तो पौधे मुरझाने लगते हैं एवं 24 घंटे से 48 घंटे तक पानी लगने से पौधे गल जाते हैं। असमय वर्षा के कारण सब्जी बीज उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

कम तापमान का सब्जी उत्पादन पर प्रभाव

जाड़े के मौसम में उगायी जाने वाली सब्जियों के बीज अंकुरण के लिए औसत तापमान 25^0 सेल्सियस होता है। लेकिन जलवायु परिवर्तन के कारण उस समय अधिक तापमान होता जा रहा है, जिससे बीज अंकुरण प्रभावित होता है एवं पौधों के मुरझाने की समस्या बढ़ जाती है। ऐसी दशा में बुआई का समय परिवर्तित करना पड़ता है। मटर की बुआई का समय 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक निर्धारित किया गया था, लेकिन अब ऐसा नहीं है। कभी-कभी जलवायु परिवर्तन के कारण तामपान अधिक होने से मटर में फूल जल्दी आ जाते हैं एवं उनकी वृद्धि कम हो जाती है और प्रति पौधा फलियों तथा दानों की संख्या घट जाती है।

जाड़े के मौसम में सब्जियों के बीज की बुआई यदि बदलती जलवायु की दर से न की जाए तो बीज का उत्पादन बहुत कम हो जाता है। टमाटर की बीज वाली फसल की बुआई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में न करने से बीज बनने की क्षमता कम हो जाती है। मटर में बीज वाली फसल की बुआई नवंबर के प्रथम सप्ताह में न करने से बीज उत्पादन क्षमता घट जाती है। बुआई पहले या बाद में करने से बीज की गुणवत्ता एवं उत्पादन कम हो जाता है। जलवायु परिवर्तन से कीट एवं रोगों का प्रकोप अधिक हो जाता है।

अधिक तापमान का सब्जी उत्पादन पर प्रभाव

कद्दूवर्गीय सब्जियां ज्यादातर खरीफ एवं गर्मी के मौसम में उगायी जाती हैं। इस समूह की सब्जियों में अधिक तापमान होने

*उद्यान विभाग, डा. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर-848125 (बिहार)

पर केवल नर फूल खिलते हैं, जिससे फल उत्पादन कम होता है। खीरे में 42^0 सेल्सियस तापमान पर बीज का विकास कम हो जाता है। खरीफ मौसम में अधिक आर्द्रता एवं तापमान होने पर सफेद मक्खियों की संख्या बढ़ जाती है, जिससे कद्दूवर्गीय सब्जियों की फसल बुरी तरह प्रभावित होती है।

बदलती जलवायु में गर्मी में भिण्डी की बुआई मार्च के प्रथम सप्ताह में और खीरा, करेला, तोरई, लौकी, खरबूजा, तरबूज एवं लोबिया की बुआई 20-25 फरवरी के मध्य करने से अधिक फल एवं बीज उत्पादन प्राप्त होता है। तापमान 40^0 सेल्सियस से अधिक होने पर बीज का विकास रुक जाता है, जो अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसलिए बीज फसल की बुआई ऐसे समय में करें, जिसमें बीज विकास के समय तापमान 40^0 सेल्सियस से अधिक न हो।

निवारण

जल प्रबंधन

तापमान में वृद्धि के साथ सब्जी फसलों में सिंचाई की आवश्यकता अधिक पड़ती है। वॉटर शेड प्रबंधन के माध्यम से हम वर्षा के पानी को संचित कर सिंचाई के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इससे जहां एक ओर सिंचाई में मदद मिलेगी वहीं दूसरी ओर जल संरक्षण भी होगा। सब्जी के खेतों में पलवार लगाने से भी जल संरक्षण होता है।

जैविक खेती

खेतों में रासायनिक खादों व कीटनाशकों के इस्तेमाल से मृदा की उत्पादकता घटती है और इनकी मात्रा आहार शृंखला के माध्यम से मानव शरीर में पहुंच जाती है। इससे अनेक प्रकार के रोग होते हैं। रासायनिक खेती से ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में भी वृद्धि होती है। अतः हमें जैविक खेती, जीरो बजट या प्राकृतिक खेती करने की तकनीकों पर अधिक से अधिक जोर देना चाहिए। उर्वरक की जगह कम्पोस्ट खाद, केंचुआ खाद एवं रासायनिक कीटनाशकों की जगह नीम की खली या पेस्ट का प्रयोग करना चाहिए।

फसल उत्पादन में नई किस्मों का योगदान

जलवायु परिवर्तन के गंभीर दूरगामी प्रभावों को ध्यान में रखते हुए ऐसी किस्मों का विकास करना पड़ेगा, जो परिवर्तित मौसम के अनुकूल हों। ये किस्में अधिक तापमान, सूखे और बाढ़ की विभीषिकाओं को सहन करने में सक्षम हों। जैसे सब्जी मटर में काशी नन्दनी किस्म का उत्पादन अधिक तापमान पर भी कम नहीं होता। यह अगेती मटर की खेती के लिए उपयुक्त किस्म है। लोबिया की उन्नत किस्में-काशी श्यामल, काशी गौरी, काशी कंचन एवं काशी उन्नति की खेती वर्ष में कभी भी की जा सकती है। पूसा चेतकी एवं पूसा हिमानी, मूली की क्रमशः अगेती एवं पछेती किस्में हैं। मिर्च की किस्म काशी अनमोल पकने में बहुत कम समय लेती है।

पौध संरक्षण

पौधे का संरक्षण रासायनिक कीटनाशी की जगह अगर जैविक विधि से करते हैं तो

वॉटर शेड प्रबंधन

वातावरण में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम होगा। जैसे अधिक तापमान पर सब्जी मटर, लोबिया एवं फ्रांसबीन में मुरझाने से बचाने के लिए 5 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा को 10 क्विंटल खाद में मिलाकर अंतिम जुताई के पहले खेत में छिड़क देते हैं। बीज को 5 ग्राम/कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा से उपचारित करने से मुरझाने की समस्या कम हो जाती है। ढैंचा का उपयोग हरी खाद के रूप में करने से मृदा का पी-एच मान कम हो जाता है, जिससे पौधों की मुरझाने की समस्या कम हो जाती है। कीट नियंत्रण के लिए नीम के सत का 4 मि.ली./लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से कीटों का आक्रमण कम होता है। टमाटर की फसल में फलछेदक को नियंत्रित करने के लिए गेंदा लगाना चाहिए।

पौधशाला में सफेद पॉलीथीन से ढककर सिंचाई करके सौरीकरण करने से कीट एवं रोगों के रोगजनक समाप्त हो जाते हैं। ■

संरक्षित खेती

सब्जियों की संरक्षित खेती बदलती जलवायु में बढ़ रही है। इसमें अधिकतम तापमान, असमय वर्षा, कीट एवं रोगों से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। संरक्षित खेती के लिए ग्लासहाउस, पॉलीहाउस, नेटहाउस, ग्रीनहाउस एवं पॉलीटनल इत्यादि का उपयोग किया जाता है।

टमाटर की संरक्षित खेती

पॉलीटनल

ग्लासहाउस एवं पॉलीहाउस में तापमान को नियंत्रित करने के लिए पैड फैन एवं स्प्रिंक्लर लगे रहते हैं, जिससे गर्मी में बाहर का तापमान 42^0 सेल्सियस से अधिक होने पर भी पॉलीहाउस में तापमान बिना किसी ऊर्जा के 20-25^0 सेल्सियस तक रखा जा सकता है। जाड़े में बाह्य तापमान 2-4^0 सेल्सियस होने पर भी ग्लासहाउस एवं पॉलीहाउस में सब्जी उत्पादन प्रभावित नहीं होता। नेटहाउस का प्रयोग करने से तेज धूप से रोग कम लगते हैं एवं धूप से बचाव हो जाता है। जाड़े के मौसम में पौधशाला में पौधों को तेज वर्षा एवं कम तापमान से बचाने के लिए पॉलीटनल का प्रयोग किया जाता है।

जलवायु परिवर्तन

औसत मौसमी दशाओं के पैटर्न में ऐतिहासिक रूप से बदलाव को जलवायु परिवर्तन कहते हैं। औद्योगिकीकरण, बढ़ते वाहनों की संख्या एवं कृषि एवं संबद्ध कार्यकलापों के जरिये उत्सर्जन से ग्रीनहाउस गैसों की परत मोटी होती जा रही है और पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। इसे ही ग्लोबल वार्मिंग या जलवायु परिवर्तन कहते हैं।

कम लागत की फसल ग्वारपाठा

सरफराज अहमद*, **जितेन्द्र सुमन**** और **सुनील गोचर****

ग्वारपाठा, सम्पूर्ण भारत में प्राकृतिक रूप से मिलता है तथा अनेक नामों से जाना जाता है जैसे-घृतकुमारी, इंडियन एलो, कुंवार पाठ इत्यादि। इसके पौधे बहुवर्षीय तथा 2-3 फीट ऊंचे होते हैं और मूल के ऊपर से पत्ते निकलते हैं। ग्वारपाठा के पत्ते हरे, मांसल, भालाकार, 1.5-2.0 फीट लंबे व 3-5 इंच चौड़े एवं सूक्ष्म कांटेयुक्त होते हैं। पत्तों के अंदर घृत के समान चमकदार गूदा होता है। यह एक औषधीय पौधा है, जिसका उपयोग विभिन्न रोगों जैसे-गठिया, मांसपेशियों की समस्या, मधुमेह, त्वचा विकार, उच्च रक्त दाब, दमा, कैंसर, अल्सर, पाचन क्रिया दोष, कब्ज आदि में किया जाता है। कम वर्षा वाले क्षेत्र ग्वारपाठा की खेती के लिए सर्वथा अनुकूल होते हैं। अनेक औषधियों में प्रयुक्त होने के कारण वर्तमान में इसकी मांग काफी बढ़ रही है। ग्वारपाठा की मांसल पत्तियों से प्राप्त जैल व सूखे पाउडर की मांग विश्वस्तर पर बनी रहती है।

ग्वारपाठा की फसल कंदों के द्वारा उगाई जाती है। इसका पौध रोपण मुख्यत: वर्षाकाल में जुलाई-अगस्त माह में किया जाता है। ग्वारपाठा की खेती के लिए चयनित खेत की 2-3 बार हल द्वारा जुताई करके अंतिम जुताई के बाद पाटा लगा देना चाहिए। इसकी खेती के लिए मुख्यत: खाद एवं उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है। यह बहुवर्षीय पौधा है इसलिए पौध रोपाई से पूर्व 10-15 टन सड़ी गोबर की खाद खेत में डालना लाभप्रद माना जाता है। पौधों को क्रमबद्ध तरीके से पंक्तियों में लगाना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे के बीच की दूरी क्रमश: 2 × 2, 2.5 × 2.5 एवं 3 × 3 फीट रखनी चाहिए। इस प्रकार एक हैक्टर क्षेत्रफल में लगभग क्रमश: 28,000, 18,000 एवं 12,000 तक पौधों की आवश्यकता होती है।

सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई

साधारणत: ग्वारपाठा की खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु गर्मियों में कभी-कभी हल्की सिंचाई करना लाभदायक होता है। पत्तियों की कटाई के एक माह पूर्व फसल में सिंचाई करने से अधिक जैल प्राप्त होता है। प्रत्येक माह के अंतराल पर खेत की निराई-गुड़ाई करके अवांछित पौधों को निकालते रहना चाहिए। फसल के जमने के बाद इसकी जड़ों से कंद निकलने शुरू हो जाते हैं, जो खेत में लगातार पौधों की संख्या बढ़ाते हैं। खेत में संख्या से ज्यादा पौधे होने पर इसके उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ता है। प्रत्येक छह माह बाद जड़ों से निकली कंदों को हटाते रहना चाहिए, जिससे पौधों की वांछित संख्या खेत में बनी रहे।

*पी.एच.डी. अनुसंधान स्कॉलर, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग; **एस.के.एन. एग्रीकल्चर यूनिवर्सिटी, जोबनेर, जयपुर (राजस्थान)

ग्वारपाठा की खेती के लाभ

- इसकी खेती के लिए खाद, कीटनाशक आदि की आवश्यकता नहीं होती है। अत: लागत कम आती है एवं मुनाफा ज्यादा होता है।
- यह फसल वर्षभर आमदनी देती है।
- पशु इसको नहीं खाता। अत: इसकी रखवाली की आवश्यकता नहीं होती है।
- इसके सूखे पाउडर व जैल की विश्व बाजार में व्यापक मांग होने के कारण इससे विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।
- ग्वारपाठा आधारित एलुआ व सूखा पाउडर बनाने वाले उद्योगों की स्थापना की जा सकती है।
- यह हल्की मृदा व कम वर्षा वाले क्षेत्रों की उपयुक्त फसल है और मृदा क्षरण को रोकने में भी सहायता प्रदान करती है।

औषधीय महत्व

- ग्वारपाठा एंटी-इनफ्लेमेट्री और एंटी-एलर्जिक है। यह बिना किसी साइड इफेक्ट के सूजन एवं दर्द को मिटाता है व एलर्जी से उत्पन्न रोगों को दूर करता है।
- यह हाजमे के लिए लाभदायक है। इसके नियमित सेवन से पेट में उत्पन्न विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है, जैसे कि गैस का बनना, पेट का दर्द आदि।
- ग्वारपाठा शरीर में सूक्ष्म कीटाणु, बैक्टीरिया, वायरस एवं कवकजनित रोगों से लड़ने में एंटीबॉयोटिक के रूप में काम करता है।
- यह जख्मों को भरने में अत्यंत लाभदायक है। मधुमेह के रोगियों के जख्म भरने में भी ग्वारपाठा कारगर सिद्ध हुआ है।
- यह हृदय के कार्य करने की क्षमता को बढ़ाता है और उसे मजबूती प्रदान करता है तथा शरीर में ताकत एवं स्फूर्ति लाता है।
- ग्वारपाठा शरीर में यकृत एवं गुर्दों के कार्यों को सुचारू रूप से संचालित करने में मदद करता है तथा शरीर से टॉक्सिक पदार्थों को बाहर निकालता है। इसमें उपस्थित एंजाइम, कार्बोहाइड्रेट, वसा एवं प्रोटीन को पेट एवं आंतों में शोषण करने की क्षमता को बढ़ाते हैं।
- ग्वारपाठा जैल प्राकृतिक रूप से त्वचा को नमी पहुंचाता है एवं उसे साफ करने के उपयोग में लाया जाता है।
- यह एग्जिमा, चोट एवं जलन, कीट के काटने, मुंहासे, घमौरियां, छालरोग इत्यादि के उपचार में भी लाभदायक है।
- ग्वारपाठा जैल, बालों में डैण्ड्रफ को दूर करने तथा बालों को झड़ने से रोकता है।

फसल की कटाई एवं भंडारण

पौधे लगाने के एक वर्ष बाद प्रत्येक चार माह में पौधे की 3-4 पत्तियों को छोड़कर शेष सभी पत्तियों को तेज धारदार हंसिये से काट लेना चाहिए। ग्वारपाठे की ताजी कटी हुई पत्तियों को छाया में रखना चाहिए। कटी हुई पत्तियों को ज्यादा दिनों तक भंडारित नहीं किया जा सकता। अत: कटाई के बाद 2-3 दिनों के भीतर इनमें से जैल को निकाल लेना चाहिए। जैल निकालने के बाद इसमें उपयुक्त परिरक्षक डालकर एक से दो वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

उपज

इस प्रकार की कृषि क्रिया से वर्षभर में प्रति हैक्टर लगभग 250 क्विंटल ताजा पत्तियां प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त लगभग 25,000 कंद प्राप्त होते हैं, जिनको रोपाई के काम में लाया जा सकता है।

सारणी 1. ग्वारपाठा की खेती में लागत और आमदनी

क्र. सं.	विवरण	व्यय (रुपये)	क्र. सं.	विवरण	प्राप्ति (रुपये)
1.	खेत की तैयारी एवं गोबर खाद	6000	1.	ताजा पत्तियां (250 क्विंटल × 2.00 दर)	50,000
2.	रोपण सामग्री (18000 पौधे × 1.00 रुपये प्रति पौध)	18000	2.	रोपण कंदों से आय	25,000
3.	बुआई, सिंचाई, निराई-गुड़ाई, कटाई व अन्य खर्च	1150			
कुल लागत		35500	कुल प्राप्ति		75000

स्रोत: एस.के.एन. कृषि महाविद्यालय, जोबनेर

आय

प्रथम वर्ष की शुद्ध लाभ 39,500 रुपये (प्राप्ति 75,000-लागत 35,500 रुपये) प्राप्त हुई। इसके उपरांत ग्वारपाठा की ताजी पत्तियां लगातार 5 वर्षों तक प्रत्येक 3-4 महीने के अंतराल पर काटी जा सकती हैं। इसकी खेती का प्रमुख लाभ यह है कि फसल के एक बार जमने के बाद प्रत्येक वर्ष खेत की तैयारी, रोपण सामग्री व बुआई की आवश्यकता नहीं होती है तथा आगे के वर्षों में कंदों को हटाना व पत्तियों की कटाई की लागत मात्र 10,000 रुपये प्रति हैक्टर आती है। अत: प्रतिवर्ष प्रति हैक्टर लगभग 65,000 रुपये का लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

विकल्प

औषधीय पौधों की खेती

सतेन्द्र कुमार*, राजीव कुमार अग्रवाल* और **सुनील कुमार***

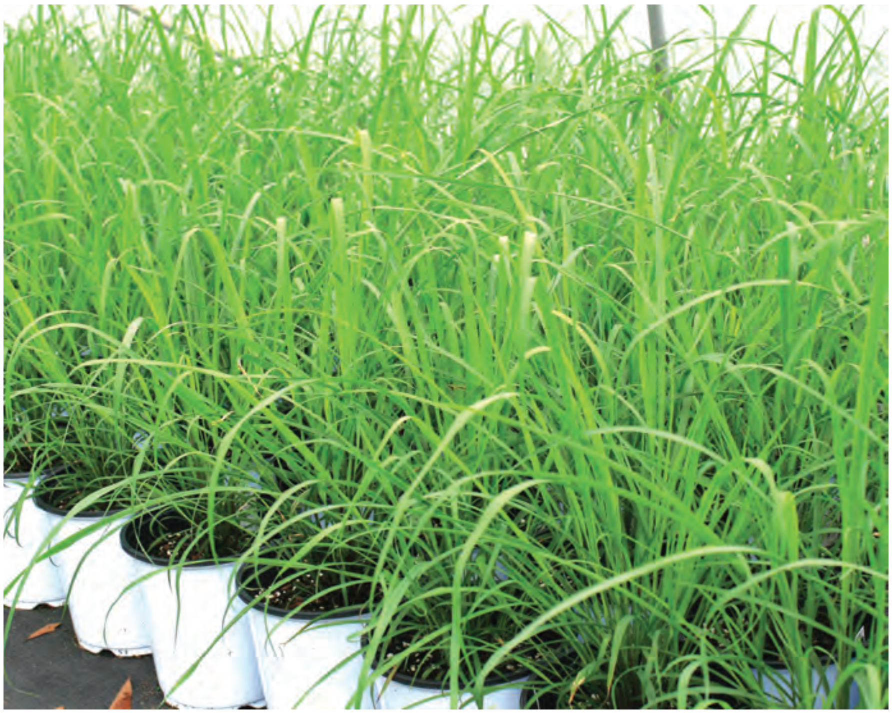

लैमन घास

औषधीय पौधे अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। कृषक प्रचलित फसलों की अपेक्षा इन्हें एक लाभदायक विकल्प के रूप में अपना सकते हैं। औषधीय फसलें विभिन्न प्रकार की मृदाओं एवं असिंचित क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक उगायी जा सकती हैं। पशु भी इन फसलों को कम नुकसान पहुंचाते हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में इनकी बढ़ती मांग के कारण बिक्री में कोई कठिनाई नहीं होती है। ये फसलें कठोर होने के कारण कीट एवं रोगों से कम ग्रसित होती हैं और इनमें कीटनाशकों की कम आवश्यकता होती है। अनेक रोगों में औषधि के काम आने के कारण खेत से इन्हें शुद्ध अवस्था में प्राप्त किया जा सकता है और मिलावटी व महंगी दवाओं से बचा जा सकता है। अतः औषधीय पौधों की खेती को एक लाभदायक व्यवसाय के रूप में अपनाया जा सकता है।

महत्वपूर्ण औषधीय पौधों की वैज्ञानिक तौर-तरीकों से खेती करने से संबंधित जानकारियां लेख में देने का प्रयास किया गया है।

लैमन घास

लैमन घास का तेल पत्तियों के आसवन से प्राप्त किया जाता है। तेल का मुख्य घटक सिट्रल होता है। इसके कारण इसमें तीक्ष्ण नीबू जैसी सुगंध आती है। सिट्रल से अल्फा आयोनोन और बीटा आयोनोन तैयार किए जाते हैं। बीटा आयोनोन से विटामिन 'ए' संश्लेषित किया जाता है एवं अल्फा आयोनोन से गन्ध द्रव्य एवं अन्य सुगंधीय रसायन संश्लेषित किये जाते हैं। सिट्रल का प्रयोग इत्र, सौन्दर्य प्रसाधन, दवा एवं साबुन उद्योग में किया जाता है। इसकी खेती केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, असोम, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश एवं महाराष्ट्र में की जाती है।

*भाकृअनुप-भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, झांसी-284003 (उत्तर प्रदेश)

मृदा एवं जलवायु

लैमन घास की खेती के लिए उष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु उत्तम है। गर्म और आर्द्र जलवायु, पर्याप्त धूप और पूरे वर्ष समान रूप में वितरित 250 से 300 मि.मी. वार्षिक वर्षा इसके लिये उपयुक्त है। कम वर्षा वाले क्षेत्र एवं ढालदार भूमि पर बारानी (असिंचित) फसल के रूप में लैमन घास उगाई जाती है।

रोपाई

दक्षिण भारत में लैमन घास, नर्सरी में बीज से पौध बनाकर अथवा पुरानी फसलों की जड़दार कलमों को लगाकर उगाई जाती है, जबकि देश के अन्य भागों में जड़दार कलमों को 5 से 8 सें.मी. की गहराई पर रोपा जाता है। कलमों को अधिक गहराई पर बोने से वर्षा ऋतु में ये सड़कर मर जाती हैं। कलमों को मृदा में अच्छी तरह दबा कर रोपें।

रोपाई का समय

मैदानी एवं समशीतोष्ण क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में रोपाई की जाती है। सिंचाई की सुविधा होने पर रोपाई फरवरी-मार्च में की जाती है। फरवरी-मार्च में रोपाई करने से फसल प्रथम वर्ष 20 प्रतिशत अधिक उपज देती है।

उन्नत प्रजातियां

प्रगति, प्रमाण, कावेरी एवं कृष्णा उन्नत प्रजातियां हैं।

उर्वरक

सामान्य मृदा में 150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर देने के लिए 188 कि.ग्रा. एन. पी. के (12:32:16) एवं 16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश बुआई के समय दें। 280 कि.ग्रा. यूरिया प्रत्येक कटाई के बाद बराबर-बराबर मात्रा में दें।

खरपतवार नियंत्रण

हाथ से निराई-गुड़ाई करते रहें। अधिक खरपतवार होने पर रासायनिक खरपतवार नियंत्रण के लिए 1.5 कि.ग्रा. डाइयूरॉन या 0.5 कि.ग्रा. ऑक्सीफ्लोरोनोन नामक शाकनाशियों का प्रयोग किया जा सकता है।

सिंचाई

लैमन घास की फसल स्थापित होने के बाद इसे अधिक पानी की आवश्यकता नहीं होती। वर्षा ऋतु को छोड़कर पूरे वर्ष में 10-12 सिंचाइयां पर्याप्त है।

कटाई

प्रथम कटाई रोपाई के 90-100 दिनों बाद की जाती है। फिर 60-75 दिनों के अंतराल पर कटाई की जा सकती है। इसे भूमि की सतह से 10 से 15 सें.मी. की ऊंचाई पर काटा जाता है।

आसवन

इसकी शाक का वाष्प आसवन या जल आसवन करके तेल प्राप्त करते हैं। लैमन घास के शाक को काटकर अर्द्ध-मुरझाई स्थिति में

इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर आसवित करते हैं। इसके सम्पूर्ण आसवन में दो से ढाई घंटे लगते हैं।

उपज

औसतन 175-225 कि.ग्रा. तेल प्रति हैक्टर मिलता है।

अश्वगंधा

अश्वगंधा को आयुर्वेद में गठिया के दर्द, जोड़ों की सूजन, पक्षाघात तथा रक्तचाप आदि रोगों के उपचार में प्रयोग किया जाता है। इसके पौधों की सूखी जड़ों से आयुर्वेदिक तथा यूनानी औषधियां बनाई जाती हैं। अश्वगंधा के बीज, फल, छाल एवं पत्तियों का उपयोग विभिन्न शारीरिक रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। इसके पत्ते बैंगन के पत्तों की भांति चौड़े होते हैं और फूल सफेद तथा हरा पीलापन लिये होते हैं। अश्वगंधा के फल पतले, आवरण से ढके, मटर के दाने के बराबर होते हैं, जो पकने पर लाल पड़ जाते हैं।

जलवायु और भूमि

खरीफ मौसम में जब वर्षाकाल का समय आधे के लगभग खत्म हो जाए, तब इसे लगाते हैं। यह शुष्क जलवायु का पौधा है। जाड़ों में जड़ का विकास अच्छा होता है। अच्छे जल निकास वाली, बलुई दोमट या हल्की लाल मृदा जिसका पी-एच मान 7.0 से 8.0 हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

उन्नत किस्में

जवाहर असगंध-20, डब्ल्यू.एस. 90-135, डब्ल्यू.एस.-134 आदि उन्नत प्रजातियां हैं।

भूमि की तैयारी और बुआई

गर्मियों में खेत को दो से तीन बार मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके खुला छोड़ दें, फिर पाटा लगाकर मृदा को भुरभुरा बना लें। इसकी बुआई अगस्त के अन्तिम सप्ताह से सितंबर के प्रथम सप्ताह के मध्य होनी चाहिए।

बीज की मात्रा एवं बीज उपचार

10-12 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से आवश्यकता होती है। बुआई के पहले बीजों को डाइथेन 45 से 30 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करना चाहिए।

पौधशाला की तैयारी

फसल की बुआई रोपाई द्वारा भी की जाती है। इसके लिए नर्सरी लगानी चाहिए। एक हैक्टर जमीन में रोपाई के लिए 500 वर्गमीटर क्षेत्रफल में 5.0 कि.ग्रा. बीज की पौधशाला लगाना पर्याप्त रहता है। इसमें पौधों की पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 4-6 सें.मी. रखते हैं।

खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 15 टन गोबर की सड़ी खाद प्रति हैक्टर देनी चाहिए। बुआई पूर्व 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर डालने से अधिक उपज मिलती है।

अश्वगंधा की फसल

इसबगोल

भारत में इसबगोल की खेती गुजरात, हरियाणा, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश में सफलतापूर्वक की जाती है। आयुर्वेदिक दवा के रूप में इसकी भूसी का उपयोग हैजा, पेचिश, कब्ज, अल्सर एवं बवासीर के रोग के उपचार में किया जाता है। इसबगोल की भूसी में पाया जाने वाला म्यूसिलेज, आंतों में उपस्थित विषैले पदार्थों तथा हानिकारक जीवाणुओं को मल के साथ बाहर निकालने में मदद करता है, जिससे उदर विकार में राहत मिलती है।

जलवायु एवं मृदा

इसबगोल की खेती के लिए ठंड तथा शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। शुष्क जलवायु, जहां फरवरी-मार्च में बरसात की संभावना न हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। हल्की मध्यम दोमट मृदा, जिसमें जल निकास की समुचित व्यवस्था हो, में इसबगोल की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

खेत की तैयारी

पहली जुताई मृदा पलटने वाले हल से और उसके बाद 2-3 जुताइयां मृदा को भुरभुरा बनाने के लिए करें।

खाद एवं उर्वरक

3 टन गोबर की खाद के साथ 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 25 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 25 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर देने के लिए एन.पी.के. 80 कि.ग्रा., 20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 35 कि.ग्रा. यूरिया दें।

बीज एवं बुआई

बुआई नवंबर के प्रथम पखवाड़े तक अवश्य कर दें। छिटकवां विधि से बुआई करने पर 10 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर लगता है। बीज को पंक्ति से पंक्ति में 25 सें.मी. की दूरी पर बोने से 6.5 कि.ग्रा. बीज लगता है।

निराई-गुड़ाई

2 से 3 निराई-गुड़ाई करें।

कटाई एवं उपज

बुआई के 120 दिनों बाद जब फसल 70 प्रतिशत तक पक जाए, तो कटाई कर लें। पौधों की कटाई जमीन की सतह से करें। 2 दिन के बाद बीज को पौधे से अलग कर लें। इस प्रकार 6-10 क्विंटल बीज प्रति हैक्टर प्राप्त होता है।

निराई-गुड़ाई

समय-समय पर दो से तीन बार निराई-गुड़ाई करें, जिससे जड़ों का विकास अच्छी प्रकार से हो तथा उपज में वृद्धि हो सकें।

सिंचाई

पहली सिंचाई रोपाई के 15-20 दिनों बाद करें। इसके बाद एक माह के अंतराल से सिंचाई करने से उपज अच्छी होती है।

फसल सुरक्षा

जड़ों को सूत्रकृमि के प्रकोप से बचाने के लिए 5 से 6 कि.ग्रा. फ्यूराडान 3-जी प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय खेत में मिलाएं। पत्ती सड़न, सीडलिंग ब्लाइट और लीफ स्पॉट से बचाव के लिए डाइथेन एम.-45 का 3.0 ग्राम प्रति लीटर की दर से घोल बनाकर 7 से 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। कीटों के प्रकोप से फसल को बचाने के लिए रोगार या नुआन 0.6 प्रतिशत का छिड़काव 2 से 3 बार करना चाहिए।

खुदाई एवं उपज

अश्वगंधा की फसल 135 से 150 दिनों में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। 4-5 क्विंटल सूखी जड़ें एवं 50 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर प्राप्त होता है।

सफेद मूसली

यह एक ऐसी जड़ी-बूटी है, जो किसी भी प्रकार की और किसी भी कारण से आयी शारीरिक दुर्बलता को दूर करने की विशेष क्षमता रखती है। इसका उपयोग आयुर्वेदिक दवाइयों के अलावा एलोपैथिक और यूनानी दवाओं में भी किया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

इसे देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में उगाया जा सकता है। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, उत्तर प्रदेश व राजस्थान में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जा रही है। सफेद मूसली मूलतः एक कंद है, जिसकी बढ़वार जमीन के अंदर होती है। इसके लिए हल्की बलुई दोमट मृदा अच्छी रहती है। वैसे उचित जल निकासी वाली रेतीली दोमट मृदा, जिसमें जैविक पदार्थ की उचित मात्रा उपलब्ध हो, इसकी खेती के लिए उत्तम है।

सफेद मूसली

प्रमुख किस्में

आर.सी.-5, आर.सी.-15, आर.सी.-1, सी.टी.आई.-22, सी.टी.आई.-7, एम.सी.टी. -502

खाद एवं उर्वरक

अच्छी फसल लेने के लिए 15 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टर बुआई के समय दें। हरी खाद का प्रयोग उपज में वृद्धि करता है।

खेत की तैयारी

मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके दो बार कल्टीवेटर से जुताई करें। पाटा देकर मृदा को भुरभुरा कर लें।

बीज की मात्रा

सफेद मूसली की बुआई के लिए 5-10 ग्राम वजन के कंद उपयुक्त रहते हैं। प्रति हैक्टर 2.0 लाख कंदों की आवश्यकता पड़ती है।

बीजोपचार

कंदों को रोपने से पहले बाविस्टीन के 0.2 प्रतिशत के घोल से उपचारित करें। पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 15×15 सें.मी. रखें।

बुआई का समय

जून से अगस्त।

सिंचाई

बरसात में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्षा के बाद 10 से 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। वर्षा न होने पर 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें।

शतावर

यह लिलिएसी कुल का आरोही पौधा है। शतावर मूलरूप से एशिया, अफ्रीका एवं ऑस्ट्रेलिया में पाया जाता है। यह हिमालय क्षेत्र में 4000 फीट की ऊंचाई पर तथा मध्य प्रदेश में पाया जाता है। शतावर 3-5 फीट ऊंचा पौधा होता है। मुख्यतः इसकी जड़ें औषधीय उपयोग में लाई जाती हैं।

औषधीय महत्व

औषधि निर्माता इसे बलवर्धक/पौरुषवर्धक एवं स्त्रियों हेतु दुग्धवर्धक दवाओं को बनाने में उपयोग में लाते हैं।

जलवायु और भूमि की तैयारी

शतावर की खेती के लिए उष्ण जलवायु और तापमान 10-50 डिग्री सेल्सियस, मृदा बलुई दोमट, जिसमें जल निकासी का उपयुक्त साधन हो, उपयुक्त होती है। वर्षा ऋतु से पूर्व खेत की दो-तीन बार जुताई कर 15 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद अच्छी तरह खेत में मिला दें। बुआई के समय 100 कि.ग्रा. एनपीके एवं 100 कि.ग्रा. यूरिया की मात्रा आधी-आधी पहली और दूसरी सिंचाई के बाद प्रति हैक्टर दें।

पौध की तैयारी और बुआई

पौध बीज द्वारा तैयार की जाती है। इसके लिए 12-13 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता प्रति हैक्टर होती है। बीज के अंकुरण में एक माह का समय लगता है। मई में बीज बो दिये जाते हैं। अगस्त में पौधे रोपण योग्य हो जाते हैं। 8 से 10 सें.मी. ऊंचाई के पौधे खेत में 60-60 सें.मी. के अंतराल पर लगाएं।

निराई-गुड़ाई

माह में एक बार करें।

जड़ों की खुदाई

रोपण के 12 से 18 माह के बद पौधा पीला पड़ने पर जड़ों की खुदाई करें, फिर इनको साफ कर हल्की धूप में सुखा लें।

उपज

850 क्विंटल प्रति हैक्टर गीली जड़ जो सूखकर 85 क्विंटल रह जाती है। सूखी जड़ का मूल्य 30,000 रुपये प्रति क्विंटल मिलता है।

फसल सुरक्षा

दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर 1.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

निराई-गुड़ाई

2 से 3 बार निराई-गुड़ाई करें।

उपज

90-95 दिनों बाद पौधों के पत्ते सूखने पर खुदाई करें। 1000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर सूखी जड़ें मिल जाती हैं।

तुलसी

अपने औषधीय एवं सगंधीय गुणों के कारण विभिन्न औषधियों को बनाने में तुलसी का प्रयोग होता है।

प्रजातियां

आर.आर.एल.ओ.सी.-11, आर.आर. एल.ओ.सी.-12, आर.आर.एल.ओ.सी.-14

जलवायु

तुलसी का पौधा विभिन्न प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है, परन्तु गर्मी और बरसात का मौसम इसके लिए अति अनुकूल है। गर्म आर्द्रता वाले स्थानों, जहां 500-1200 मि.मी. वार्षिक वर्षा होती है, यह उगाया जा सकता है।

भूमि और खेत की तैयारी

दोमट उपजाऊ मृदा तथा रेतीली दोमट मृदा, जिसका पी-एच मान 6.5 से 8.5 हो, तुलसी की खेती के लिए उपयुक्त है। खेत की मृदा को दो या तीन बार जुताई कर समतल बना लें। जल निकासी अच्छी हो।

नर्सरी की तैयारी

इसके बीज के रोपण के लिए ऊंची-ऊंची क्यारियां 3×8 फीट आकार की होनी चाहिए। बीज लगाने से पहले 100 ग्राम नीम की खली और 100 ग्राम अलसी की खली प्रति क्यारी मिला लें। बीज बोने का उपयुक्त समय फरवरी के अंत से मार्च मध्य तक है।

बीज की मात्रा

400 ग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बीज अधिक गहरे न बोएं। बीज बोने के बाद सुबह-शाम क्यारियों की हजारे से हल्की सिंचाई करें। बीज 6-10 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं तथा 5-6 हफ्तों में इन्हें प्रतिरोपित किया जा सकता है।

प्रतिरोपण

प्रतिरोपण से पहले खेत को जोतकर तैयार कर लें, फिर 15 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद मिलाएं। प्रतिरोपण के पौधे 10-12 सें.मी. लंबे होने चाहिए तथा उनमें 5-6 पत्ते अवश्य हों। पौधों को 50 × 30 सें.मी. के अंतराल पर लगाना चाहिए। प्रतिरोपण अप्रैल में करें।

सिंचाई

ग्रीष्म ऋतु में 12-15 दिनों में, बरसात में कोई आवश्यकता नहीं, उसके बाद 20-25 दिनों के उपरांत सिंचाई करें। कटाई से 10 दिनों पहले सिंचाई करना बंद कर दें।

निराई-गुड़ाई

प्रतिरोपण के 12-20 दिनों बाद और 50 दिनों के बाद घास अथवा खरपतवारों को निकालना चाहिए। अगर फसल की कटाई एक बार करनी हो तो एक या दो बार और अगर तीन बार करनी हो तो कटाई के 8-10 दिनों बाद घास अथवा खरपतवारों को निकालना चाहिए।

फसल कटाई

तुलसी की कटाई तीन बार जून, अगस्त तथा अक्टूबर में की जाती है। फसल को जमीन से 20-25 सें.मी. ऊंचाई पर काटें। तीन कटाइयों से 38-42 टन प्रति हैक्टर फसल तथा 160-170 कि.ग्रा. तेल मिलता है।

मेंथा या मिंट

भारत में मेंथा की खेती लगभग 1.5 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जा रही है। विश्व में इससे लगभग 20,000 टन तेल का उत्पादन हो रहा है, जिसमें भारत लगभग 15,000 टन तेल का उत्पादन रहा है। इसकी खेती के लिये उत्तर प्रदेश और पंजाब अग्रणी राज्य हैं। इसके अलावा जम्मू एवं कश्मीर, हरियाणा, बिहार, मध्य प्रदेश एवं आंध्र प्रदेश में भी छोटे स्तर पर कहीं-कहीं मेंथा की खेती की जा रही है। इसके तेल का उपयोग मुख्यत: दवाइयों, खाने एवं प्रसाधन सामग्रियों में किया जाता है। तेल का मुख्य घटक मेन्थाल है।

बुआई

पौधों की भूस्तारी (सकर्स) द्वारा बुआई 15 जनवरी से फरवरी के अंत तक की जाती है।

उर्वरक

खेत में अंतिम जुताई के समय 25-30 टन सड़ी गोबर की खाद अच्छी तरह से मिला देते हैं। प्राय: 120-150 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50-60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस एवं 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है।

उन्नत प्रजातियां

हिमालय, कोसी, सक्षम एवं कुशल प्रजातियां उत्तम हैं।

कटाई

सामान्य मेंथा की पहली कटाई बुआई के 100-120 दिनों बाद की जाती है। दूसरी कटाई पहली कटाई के 60-70 दिनों बाद की जाती है। कटाई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि आसमान साफ हो तथा चमकती धूप हो। फसल की कटाई करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि काटी गई फसल को ढेर में एकत्रित नहीं किया जाये। फसल को अपरान्ह में काटना चाहिये। जापानी मेंथा पौधों के एक हैक्टर क्षेत्रफल से पहली कटाई में लगभग 120 कि.ग्रा. तथा दूसरी कटाई से लगभग 75 कि.ग्रा. तेल प्राप्त होता है।

आंवला की बागवानी से लाभ

अरविन्द कुमार* और **ऋषिपाल****

आंवला बहुत ही उपयोगी तथा गुणकारी फल है। वास्तविकता में यह प्रकृति की ऐसी देन है, जो शरीर के अनेक रोगों को दूर कर बेहतर स्वास्थ्य के साथ लंबी आयु प्रदान करता है। इसका फल विटामिन 'सी' का बेहतरीन स्रोत है। आंवले से मुरब्बा तथा अचार भी बनाए जाते हैं। आयुर्वेद एवं यूनानी दवाओं में इसका काफी इस्तेमाल होता है। इसके फलों को ताजा अथवा सुखाकर दोनों तरह से उपयोग में लाया जाता है।

आंवला भारत का देशज पौधा है। यह बेहद उत्पादनशील, प्रचुर पोषक तत्वों वाला तथा अद्वितीय औषधीय गुणों से भरपूर फल है। हमारे देश में लगभग 72 लाख हैक्टर भूमि ऊसर है। इसमें से उत्तर प्रदेश में ही लगभग 7 लाख हैक्टर भूमि ऊसर होने के कारण बंजर पड़ी है। ऐसी भूमि में अनाज की खेती के लिए पूरे प्रक्षेत्र का सुधार जरूरी है। अतः यहां पर कम लागत से ही भूमि सुधार करके ऊसर प्रतिरोधी फल वृक्षों की बागवानी की जा सकती है।

मृदा

आंवले की बागवानी सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। ऊसर तथा अन्य प्रकार की बंजर भूमि, जिनका पी-एच मान 7.5-9.0 तक एवं विनियमशील सोडियम 35-40 प्रतिशत व क्षारीय भूमि (जिसकी विद्युत चालकता 9.5 तक हो) में इसकी खेती की जा सकती है। वैसे उचित जल निकास के साथ बलुई दोमट से मटियार दोमट भूमि, जो कैल्शियम वाली हो, आंवले की बागवानी के लिए बढ़िया रहती है।

उन्नत किस्में

चकैया, कृष्णा, कंचन, नरेन्द्र आंवला-6, नरेन्द्र आंवला-7, बलवन्त आंवला, आनन्द-2 आदि।

प्रवर्धन

आंवले का प्रवर्धन, बीज तथा कायिक विधि से किया जाता है। अच्छी फलन व व्यावसायिक खेती के लिए केवल कलमी पौधों को ही लगाना चाहिए। कायिक विधि से इसके पौधे भेंट कलम या पैबन्दी, चश्मा, पैच बडिंग द्वारा तैयार किए जाते हैं। इनमें पैबन्दी, चश्मा तथा विरूपित वलय रिंग विधियां सबसे सफल पाई गई हैं। इसके लिए 5-6 माह पुराने बीजू पौधों पर चश्मा चढ़ाने का काम मध्य मई से मध्य सितंबर तक किया जा सकता है। ऐसे पौधों का ही इसके लिए चयन करना चाहिए, जिनमें 3-4 वर्षों तक अच्छी फलन आ चुकी हो।

खाद एवं उर्वरक

आंवले की अच्छी उपज के लिए खाद एवं उर्वरकों की मात्रा प्रति पेड़/प्रतिवर्ष की दर से देनी चाहिए।

सिंचाई एवं खरपतवार नियंत्रण

आंवला के नवरोपित बागों में गर्मी के मौसम में 10 दिनों के अंतराल पर तथा जाड़े में एक माह के अंतराल पर पौधों की सिंचाई करते रहना चाहिए। पौधों के बड़े हो जाने पर बागों में मई-जून में एक बार पानी देना जरूरी है। फूल आते समय इसमें पानी नहीं देना चाहिए। इसके साथ ही बागों की निराई-गुड़ाई करके खरपतवार आदि निकाल देने चाहिए। ऊसर भूमि में लगे बगीचों में प्रत्येक वर्ष ढैंचा की बुआई करके पलट देने से मृदा उर्वरता में काफी सुधार होता है।

शिखर रोपण प्रक्रिया

पुराने बीजू पेड़ों को भी शिखर रोपण (टॉप ड्रेसिंग) द्वारा कलमी बनाया जा सकता है। इसके लिए पेड़ की मोटी शाखाओं को जमीन से उचित ऊंचाई पर जनवरी/फरवरी में काटकर कटे भाग पर ब्लाइटॉक्स का लेप कर गीली मिट्टी रख देते हैं। इसे बोरे या टाट के टुकड़े से बांध देते हैं। जब इनसे निकली शाखाएं टहनी कलम लायक हो जाती हैं तो जून-जुलाई में इन्हीं पर अच्छी किस्म का पैबन्दी चश्मा चढ़ा देना चाहिए।

रोगों एवं कीटों का प्रबंधन

दीमक

ये कीट या तो भूमि में रहकर तने को खोखला करते हुए ऊपर की ओर बढ़ते हैं अथवा पेड़ों की बाहरी सतह पर मिट्टी की सुरंग बनाकर इसके अंदर घुसकर छाल को खाते हैं। इनके कमेरों द्वारा जड़ों की छाल या बीच की लकड़ी का नुकसान होने से पेड़ सूखकर मर जाते हैं।

नियंत्रण

- पेड़ों के आसपास गहरी जुताई करें और पानी दें, जिससे इनका प्रकोप कम हो जाए। जहां तक हो सके रानी दीमक को नष्ट कर दें।

*सह निदेशक/सहप्राध्यापक, उद्यान अनुसंधान (उद्यान विभाग); **प्रक्षेत्र सहायक, जैविक नियंत्रण प्रयोगशाला (कीट विज्ञान विभाग/उद्यान विभाग) सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय-मेरठ (उत्तर प्रदेश)

फल से लदी डाल

- पौधे लगाने से पहले गड्ढे में 2-3 बाल्टी पानी डाल दें। नए पौधे लगाने के बाद तथा लगे हुए पौधों में एक लीटर क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. प्रति एकड़ सिंचाई करते समय डालें।

पत्ती खाने वाला कीट

ये कीट लंबे व बालदार होते हैं और झुंड में पत्तियों पर चिपककर रस चूसते हैं तथा उसका पूरा हरा भाग खाकर नष्ट कर देते हैं।

नियंत्रण

- डायमेक्रॉन 0.2 प्रतिशत दवा का छिड़काव करने से इस कीट से छुटकारा मिल जाता है।

गांठ बनाने वाली सूंडी

इस कीट के प्रकोप से आंवले के पेड़ की टहनियों का अगला हिस्सा गांठ के रूप में फैल जाता है। इसमें इस कीट की काले रंग की सुंडियां पाई जाती हैं। ग्रसित टहनियां भद्दी दिखती हैं। अगले वर्ष गांठों के ऊपर टहनियों की फिर बढ़वार होती है।

सूंडी कीट

पौध रोपण

आंवले के बाग लगाने का सबसे अच्छा समय जुलाई-अगस्त का होता है। सिंचाई सुविधा होने पर यह काम फरवरी में भी किया जा सकता है। इसकी प्रत्येक किस्म में स्व-बंध्यता होती है। इस वजह से उचित परागण हेतु आंवले के बाग में दो-तीन किस्मों के पौधे लगाने चाहिए तथा 5 प्रतिशत देसी आंवला के पौधे भी। इससे अच्छी उपज मिल जाती है। मई-जून में बंजर भूमि में 8×8 मीटर, सामान्य भूमि में 10×10 मीटर तथा अधिक उपजाऊ भूमि में 12×12 मीटर की दूरी पर 90×90×90 सें.मी. आकार के गड्ढे खोद लेने चाहिए। इन गड्ढों में बरसात का पानी भरने देना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में 30-40 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, नीम की खली 1.5 कि.ग्रा., यूरिया 300 ग्राम, सिंगल सुपर फॉस्फेट 500 ग्राम, म्यूरेट ऑफ पोटाश 150 ग्राम एवं 50-60 ग्राम फॉलीडाल डस्ट भर देनी चाहिए। ऊसर भूमि में उपरोक्त तत्वों के अतिरिक्त सारणी-1 के आधार पर भूमि सुधारक एवं गोबर की खाद से गड्ढा भरना आवश्यक है।

नियंत्रण

- रासायनिक नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरप्रिड 1.25 मि.ली. या फॉस्फेमिडान 0.6 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर जुलाई-अगस्त में छिड़काव करके काफी हद तक इसे रोका जा सकता है।

छाल खाने वाली सूंडी

यह कीट आमतौर से दिखाई नहीं देता है, परंतु जहां पर टहनियां अलग होती हैं वहां पर इसकी विष्ठा व लकड़ी का बुरादा जाले के रूप में दिखाई देते हैं। दिन के समय इस कीट की सूंडियां तने के अंदर सुरंग बनाती हैं। रात को छेद से बाहर निकलकर जाले के नीचे रहकर छाल को खाती हैं एवं खुराक नली को नष्ट कर देती हैं।

सारणी-1. आंवले की अच्छी उपज के लिए खाद एवं उर्वरकों की मात्रा

पौधे की आयु (वर्ष)	नाइट्रोजन (ग्राम)	फॉस्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)	पौधे की आयु (वर्ष)	नाइट्रोजन (ग्राम)	फॉस्फोरस (ग्राम)	पोटाश (ग्राम)
1	100	50	75	6	600	300	450
2	200	100	150	7	700	350	525
3	300	150	225	8	800	400	600
4	400	200	300	9	900	450	675
5	500	250	375	10 या अधिक	1000	500	750

छाल खाने वाली सूंडियों का आक्रमण

नियंत्रण

- सितंबर-अक्टूबर के दौरान तने के प्रत्येक छेद में 2 मि.ली. डाइक्लोरोवास नुवान 76 ई.सी. या 5 मि.ली. मिथाइल पैराथियान मेटासिड 50 ई.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाएं तथा इसके बाद छेदों को मिट्टी से बंद कर दें।

रोग उपचार

रस्ट रोग

इस रोग के लक्षण पत्तियों पर हल्के पीले चकत्तों के रूप में दिखने शुरू होते हैं। ये बाद में मटमैले पाउडर के रूप में पेड़ के अन्य हिस्सों पर भी दिखाई देने लगते हैं। इससे रोगी पेड़ों की पत्तियां झड़ने लगती हैं। पेड़ कमजोर हो जाने से फल छोटे आकार के व कम लगते हैं।

नियंत्रण

- इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत डाइथेन जेड-78 या मैंकोजेब का छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

ऊतक क्षय रोग

यह आंवला के पेड़ का एक दैहिक रोग है, जो बोरॉन तत्व की कमी के कारण फलों पर होता है। इससे ग्रसित फलों में काले धब्बे बनने लगते हैं। अंत में फल पूरा काला हो जाता है।

नियंत्रण

- इसके नियंत्रण के लिए 0.4 प्रतिशत से 0.6 प्रतिशत बोरेक्स का पहला छिड़काव अप्रैल में दूसरा जुलाई में तथा तीसरा सितंबर से करना चाहिए।

उपज

शुरू में आंवले के पौधों में फलन कम आती है। परन्तु पूरी तरह से विकसित पेड़ से एक वर्ष में 2-3 क्विंटल फल प्रति पेड़ तथा 12-15 टन उपज प्रति हैक्टर प्राप्त हो जाती है।

गुलाब की खुशबूयुक्त जिरेनियम की उन्नत खेती

दिपेन्द्र कुमार*, **प्रियंका सूर्यवंशी****, **अमित तिवारी***, **सोनवीर सिंह***, **गुंजन भट्ट***, **आर.सी. पडालिया*** और **वेद राम सिंह***

वर्तमान परिवेश में परंपरागत कृषि में बदलाव करते हुए हमें औषधीय एवं सगंधीय पौधों की ओर ध्यान देने की जरूरत है। इससे एक तरफ जहां किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य साकार हो सकेगा और वहीं दूसरी तरफ फसल विविधीकरण को नई दिशा मिल सकेगी। इस परिप्रेक्ष्य में गुलाब की खुशबूयुक्त जिरेनियम की खेती किसानों के लिए अत्यन्त लाभकारी साबित हो सकती है। जिरेनियम के तेल की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए उन्नत कृषि तकनीकें विकसित की गई हैं, जो पैदावार बढ़ाने में सहायक हैं। इन कृषि तकनीकों को अपनाकर किसान उच्च गुणवत्ता वाले तेल को प्राप्त कर अच्छा मुनाफा कमा सकते हैं।

जिरेनियम एक सुगन्धित पौधा है, जो व्यावसायिक रूप से तेल के लिए उगाया जाता है। इसे गुलाब की खुशबूयुक्त जिरेनियम भी कहा जाता है। यह गरीबों के गुलाब के रूप में जाना जाता है। जिरेनियम का मुख्य उत्पाद इसकी पत्तियों, तने और फूलों से निकलने वाला तेल है। इसमें स्वास्थ्य लाभ के उत्कृष्ट गुण हैं और इसका उपयोग सुगंधित उपचारों में भी किया जाता है। तेल निष्कर्षण के लिए जिरेनियम की सबसे आम प्रजाति *पेलार्गोनियम ग्रेवोलेंस* है। इसकी वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय मांग 600 टन से अधिक है, जो ज्यादातर चीन, मोरक्को, मिस्र और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों द्वारा पूरी की जाती है। 149 टन वार्षिक खपत के मुकाबले भारत में सालाना 5 टन जिरेनियम तेल का उत्पादन होता है। शेष मात्रा का बड़े पैमाने पर आयात किया जाता है, जिसमें काफी विदेशी मुद्रा खर्च होती है।

*सीमैप अनुसंधान केन्द्र, पन्तनगर, ऊधम सिंह नगर-263149 (उत्तराखंड); **सीमैप, लखनऊ-226002 (उत्तर प्रदेश)

जलवायु

जिरेनियम की फसल को विविध जलवायु परिस्थितियों में उगाया जा सकता है, लेकिन यह कम आर्द्रता वाली हल्की जलवायु में अच्छा प्रदर्शन करती है। इसे 1000 से

लाभकारी है जिरेनियम

2000 मीटर तक अलग-अलग ऊंचाई पर उगाया जा सकता है। इस फसल को 100 से 150 सें.मी. वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है। इस मात्रा से अधिक वर्षा कई कवक रोगों का कारण बनती है और फसल की पैदावार को प्रभावित करती है।

मृदा

जिरेनियम की फसल बारीक, बलुई, दोमट एवं शुष्क मृदा में अच्छा प्रदर्शन करती है। खारी एवं क्षारीय मृदा इसकी खेती के लिए अयोग्य है। जैविक कार्बन समृद्ध मृदा इसकी खेती के लिए अच्छी है और यदि मृदा में कैल्शियम मौजूद है, तो यह बहुत अच्छा प्रदर्शन करती है। इसकी खेती के लिए मृदा का पी-एच मान 5.5 से 7.5 होना चाहिए।

प्रजातियां

बोरबोन/रियूनियन, अल्जीरियन/ट्यूनीस्पिन, इजिप्सियन/केलकर, सिम-पवन जिरेनियम की प्रमुख किस्में हैं।

भूमि की तैयारी

अच्छी तरह से पौधों की स्थापना जिरेनियम की फसल में प्राथमिक आवश्यकता है, क्योंकि यह लंबी अवधि की फसल है। इसकी खेती के लिए सभी प्रकार के खरपतवारों को हटाने के बाद मृदा को बारीक अवस्था में रखना चाहिए। खेत से अतिरिक्त पानी निकालने के लिए भूमि में हल्की ढलान होनी चाहिए।

पौध तैयार करना

साधारणतः भारत में जिरेनियम के बीज नहीं बनते हैं, इसलिए इसकी पौध तैयार करने के लिए कलमों का प्रयोग किया जाता है। भूमि का चुनाव करते समय ध्यान दें कि पौधशाला में सूर्य के प्रकाश की समुचित व्यवस्था हो तथा मृदा बलुई दोमट होनी चाहिए।

जिरेनियम के पौधे

- **क्यारियां बनाना:** क्यारियों में सितंबर अथवा फरवरी में अच्छी प्रकार की जुताई की जानी चाहिए। खरपतवाररहित भूमि में खाद पर्याप्त मात्रा में डाल देनी चाहिए तथा क्यारी भूमि से 8-10 सें.मी. उठी हुई बनानी चाहिए।
- **कलम बनाना:** प्रायः 5 माह से अधिक आयु के लिए फरवरी-मार्च अथवा सितंबर-अक्टूबर का समय सबसे उपयुक्त है। इसके लिए 5-7 गांठ वाली टहनी को चुनते हैं। टहनी की लंबाई 10 से 15 सें.मी. और मोटाई पेन्सिल के समान होनी चाहिए।
- **कलमों का उपचार:** कटिंग के रोपण से पहले, कटिंग का विकास हार्मोन (इंडोल-3 ब्यूटिरिक एसिड: 'रूटेक्स') और कवकनाशी (0.3 प्रतिशत डाइथेन एम-45) के साथ किया जाना चाहिए। कटिंग को लगभग 30 मिनट के लिए कवकनाशी घोल में डुबोया जाना चाहिए। नर्सरी रोपण क्षेत्र को भी एक ही कवकनाशी के साथ उपचारित किया जाना चाहिए।

जिरेनियम के फूल

उपयोग

इसके तेल की खुशबू गुलाब जैसी होने के कारण इसका उपयोग खाद्य पदार्थों, उच्च गुणवत्तायुक्त साबुन, मुंह का मरहम, त्वचा का लेप आदि बनाने में होता है। जिरेनियम के तेल की सबसे बड़ी गुणवत्ता यह है कि इसका क्षारीय माध्यमों से विघटन नहीं होता है। गुलाब की तुलना में इससे बनी वस्तुएं टिकाऊ होती हैं। इसका उपयोग मानसिक शान्ति व बिना विकार निद्राकारी औषधियों में भी किया जाता रहा है, जिसे आजकल सगंध चिकित्सा भी कहते हैं। जिरेनियम के तेल में मुख्य यौगिक द्रव्य का नाम 'जिरेनियोल' और सिट्रोनेलोल है। इसके तेल का उपयोग 2000 से अधिक उत्पादों में किया जाता है।

जिरेनियम की खेती में लागत कम और मुनाफा ज्यादा

- **पौध रोपण:** पौध रोपण के लिए तैयार खेत में 45 से 60 दिनों पुरानी जड़युक्त पौध को 50 सें.मी. × 50 सें.मी. की दूरी पर रोपित करते हैं। जड़युक्त पौधों को रोपित करने से पहले फफूंदीनाशक (थीरम या बाविस्टीन या डाइथेन एम-45) के 0.3 प्रतिशत घोल में 30 मिनट तक उपचारित करें।
- **खाद व उर्वरक:** जिरेनियम एक पत्तीदार फसल है। इसलिए पत्तियों के उत्पादन की दृष्टि से खाद एवं उर्वरकों की उचित मात्रा में व्यवस्था करना ठीक रहता है। खेत तैयार करते समय 50 क्विंटल/हैक्टर की दर से वर्मीकम्पोस्ट अथवा 300 क्विंटल गोबर की सड़ी हुई खाद डाल देनी चाहिए। पौध रोपण के 15 दिनों बाद रासायनिक उर्वरकों का उपयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश 150:60:40 कि.ग्रा. का प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। फॉस्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा अंतिम जुताई के समय मिलाएं तथा नाइट्रोजन को पांच बार 30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 15-20 दिनों के अंतराल पर डालें।
- **सिंचाई:** पौध लगाते समय पौधों को जीवित रखने के लिए सिंचाई

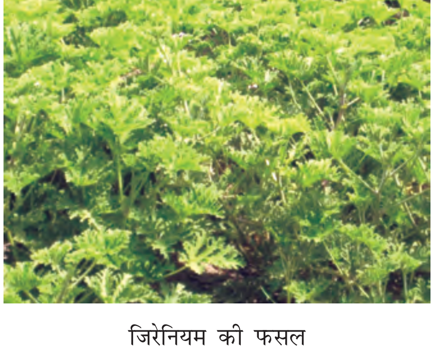

जिरेनियम की फसल

जिरेनियम के सुगंधित पुष्प

करना अति आवश्यक है। सिंचाई का अंतराल व पानी की मात्रा मृदा के प्रकार और मौसम पर निर्भर करती है। सामान्य तौर पर फसल को 5 से 6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। आवश्यकता से अधिक सिंचाई से फसल में जड़गलन रोग की आशंका बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप पौधे मरने लगते हैं और पैदावार प्रभावित होती है।

- **खरपतवार नियंत्रण:** किसी भी फसल की पैदावार को बढ़ाने में खरपतवार नियंत्रण की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। सामान्यत: जिरेनियम में खरपतवार कम उगते हैं, किन्तु शुरूआत में पौध रोपण के बाद निराई-गुड़ाई करके काफी हद तक खरपतवारों को रोका जा सकता है।

कीट व रोग

उकठा रोग

यह रोग *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरियम* नामक फफूंद के संक्रमण से होता है।

उपचार

इस रोग के जैसे ही लक्षण दिखाई दें, तुरन्त सिंचाई रोक देनी चाहिए। बेनलेट अथवा बाविस्टीन का घोल/छिड़क देना चाहिए। पौध रोपण के समय पौधों को सेरेसान, थीरम या इमिसान के घोल से उपचारित कर लेना चाहिए।

जड़गलन रोग

मुख्य रूप से *फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरियम*, पीथियम प्रजातियां व वलीओस्पोरियम प्रजातियां यह रोग उत्पन्न करती हैं।

उपचार

रोग की पहचान होने पर 0.25 प्रतिशत (25 ग्राम दवा 10 लीटर की बाल्टी में मिलाकर) डाइथेन एम-45 अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करना चाहिए।

दीमक का प्रकोप

फ्यूराडान या फोरेट 20 कि.ग्रा./हैक्टर धूल या रेत में मिलाकर पौध रोपण से पूर्व मृदा में प्रयोग किया जाना चाहिए। खड़ी फसल में क्लोरोपायरीफॉस 800 मि.ली./हैक्टर की दर से भूमि नमी की अवस्था में छिड़काव कर देना चाहिए।

कटवा कीट एवं गुबरैला/व्हाइट ग्रब का प्रकोप

खेत में कच्चे गोबर के प्रयोग से ये कीट आक्रमण करते हैं। ये पौधों की पत्तियों को काट देते हैं, जिससे पौधा धीरे-धीरे सूख जाता है।

उपचार

क्लोरोपायरीफॉस 800 मि.ली./हैक्टर की दर से रेत में मिलाकर भूमि में बुरकाव अथवा छिड़काव करना चाहिए। इसके बाद सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए। निमेटोड या कटवा कीटजनित रोगों के लिए 20 कि.ग्रा. एल्ड्रिन/हैक्टर की दर से उपयोग किया जा सकता है।

जैविक नियंत्रण

इन कीटों से फसल को बचाने के लिए नीम की खली, केंचुए की खाद, अथवा एप्रीकोट इत्यादि का प्रयोग करने से मृदाजनित रोगों से बचाव किया जा सकता है। अमलतास के छिलकों का गूदा भी सूत्रकृमिजनित रोगों के नियंत्रण में प्रभावी होता है।

जिरेनियम का तेल

ताजी काटी गईं पत्तियों को कुछ देर के लिए छाया में मुरझाने के लिए छोड़ देते हैं। ऐसा करने से पत्तियों में उपस्थित तेल ग्रन्थियां अपने तेल को ग्रन्थियों में बन्द कर लेती हैं तथा परिवहन के समय तेल उड़कर बाहर वायुमण्डल में नहीं जा पाता है। आसवन संयंत्र की दूरी खेत से 30 कि.मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए।

- वाहन त्रिपाल से ढके हुए होने चाहिए।
- खेत से पत्तियों का परिवहन प्रात:काल अथवा सायंकाल में ही किया जाना चाहिए।
- आसवन संयंत्र तक पत्तियों के पहुंचने के बाद यदि तेल निकालना सम्भव न हो तो पत्तियों को शीतगृह में तिरपाल से ढककर रखना चाहिए।

जिरेनियम का तेल आसवन विधि से 600 कि.ग्रा. के टैंक में 500 कि.ग्रा. पत्तियों को 100 प्रतिशत पानी डालकर प्राप्त किया जा सकता है।

जिरेनियम के उत्पाद

गुणकारी है जिरेनियम

पत्तियों की कटाई

सामान्यत: अच्छी देखरेख किये जाने पर जिरेनियम की पत्तियों की पहली कटाई रोपण के 3-4 माह बाद कर सकते हैं। इनकी कटाई उनके पूर्ण विकसित होने पर की जानी चाहिए। पत्तियां अधिक रसीली या अधिक पीली नहीं होनी चाहिए।

नोट: पत्तियों का रंग गहरे हरे रंग से बदलकर हल्का पीला पड़ गया हो। इन्हें मसलने पर गुलाब जैसी खुशबू आनी चाहिए। तीखी नीबूयुक्त खुशबू का होना यह दर्शाता है कि उस समय पत्तियों में 'सिट्रानेलोल' की मात्रा जिरेनिओल की तुलना में अधिक है।

व्यावसायिक स्तर पर जिरेनियम तेल का उत्पादन

पत्तियों में जिरेनियम तेल की मात्रा कई बातों पर निर्भर करती है जैसे-जलवायु, समुद्रतल से ऊंचाई, परिवहन के तरीके, प्रजाति, पौधों की आयु, आसवन के तरीके, खेती की देखरेख आदि। समुद्रतल से 1000-1800 मीटर ऊंचाई होने पर इससे 0.12-0.20 प्रतिशत तक तेल प्राप्त किया जा सकता है। प्रति हैक्टर पत्तियों की मात्रा 250 से 300 क्विंटल, तेल 0.1 प्रतिशत के आधार पर 25 से 30 कि.ग्रा./हैक्टर प्रतिवर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

तेल की गुणवत्ता एवं मूल्य वृद्धि

जिरेनियम से प्राप्त तेल सुगन्धित होता है। प्राप्त तेल को छानकर नमीयुक्त करने के बाद एल्यूमिनियम के बर्तन में रखकर बन्द कर देना चाहिए। 20 डिग्री तापमान पर जिरेनिओल 50-80 प्रतिशत तथा सिट्रोनेलोल 20 से 50 प्रतिशत तक होती है।

आय-व्यय

व्यय प्रति हैक्टर 80,000 रुपये, आय प्रति हैक्टर 2,50,000 रुपये एवं शुद्ध लाभ प्रति हैक्टर-1,70,000 रुपये।

अमरूद में थैलाबंदी तकनीक अपनाएं और आमदनी बढ़ाएं

कंचन कुमार श्रीवास्तव* और **दिनेश कुमार***

अमरूद को 'उष्ण का सेब' कहा जाता है। इसकी काश्तकारी उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में सफलतापूर्वक की जाती है। अमरूद का फल स्वादिष्ट एवं पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसमें विटामिन 'सी' सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है। अमरूद को अधिक पी-एच मान वाली मृदा में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके कलमी पौधों में फलत दूसरे वर्ष प्रारंभ हो जाती है तथा 3-4 वर्ष में व्यावसायिक फलत शुरू हो जाती है। अमरूद के फल का उपयोग ताजा खाने एवं प्रसंस्करित रूप में उपयोग में लाया जाता है। देश के कुल फल उत्पादन में अमरूद का हिस्सा लगभग 5 प्रतिशत है। वर्ष 2016-17 के आंकड़े के अनुसार भारत में कुल 3.65 मिलियन टन अमरूद का उत्पादन 2.62 हैक्टर क्षेत्रफल से हुआ था। उत्तर प्रदेश, अमरूद उत्पादन में शीर्ष स्थान पर है। यहां 48,698 हैक्टर क्षेत्रफल में इसकी खेती की जाती है, जिसमें 9,14,350 मीट्रिक टन उत्पादन होता है तथा औसत उत्पादकता 18.78 टन प्रति हैक्टर है (राष्ट्रीय बागवानी बोर्ड, वर्ष 2016-17)।

अमरूद का फल वर्षभर उपलब्ध रहता है। भारत में इसकी तीन मुख्य बहार सारणी-1 में दर्शायी गयी हैं।

भारत में अमरूद की मृग बहार का फल सर्वाधिक उत्पादित किया जाता है। शरद ऋतु में फल का आकार एवं भार आकर्षक होता है, कुल घुलनशील ठोस, अम्ल/शर्करा संतुलन सर्वोत्तम होता है। इस समय फल मक्खी का प्रकोप भी नहीं होता है। जाड़े या मृग बहार में उत्पादित फल ऊंचे दाम पर बेचा जाता है और कृषक को अधिक लाभ होता है। अमरूद में फलों के आकार, भार, गठन एवं फल मक्खी से मुक्त फल की अधिक कीमत मिलती है।

भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ में किये गये प्रयोग में पाया गया कि यदि फलों की थैलाबंदी कर दी जाये तो इनकी गुणवत्ता में गुणात्मक वृद्धि हो जाती है। इससे फल को अधिक दाम में बेचकर कृषक ज्यादा लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

फल की थैलाबंदी

फलों की थैलाबंदी उचित समय पर करनी चाहिए। अमरूद के मृग बहार

*प्रधान वैज्ञानिक, फसल उत्पादन प्रभाग, भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ-227101 (उत्तर प्रदेश)

अमरूद फल थैलाबंदी का दृश्य

सारणी 1. अमरूद की मुख्य बहार

बहार	पुष्पण	फल की उपलब्धता
मृग बहार	जुलाई-अगस्त	नवंबर-जनवरी
अम्बे बहार	मार्च-अप्रैल	जून-जुलाई
हस्त बहार	सितंबर-अक्टूबर	मार्च-अप्रैल

के वृक्षों में फल लगने के 30-40 दिनों बाद अर्थात फल का आकार 35 × 32 मि.मी. (लंबाई × चौड़ाई) होने पर इसको कागज के लिफाफे में बंद करने की प्रक्रिया को फल थैलाबंदी कहा जाता है। इस तकनीक का उपयोग आज अधिकतर फलों जैसे-आम, अमरूद, लीची आदि में सफलतापूर्वक किया जाता है। पंजाब, दिल्ली, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, ओडिशा एवं दक्षिण भारत के आम एवं अमरूद उत्पादक इस तकनीक का व्यावसायिक ढंग से प्रयोग कर रहे हैं। इस तकनीक के प्रयोग से फल की गुणवत्ता जैसे अधिक आकर्षक एवं फल पर एकसमान रंग का विकास होता है। इससे फलों पर कीटों आदि द्वारा नुकसान एवं संक्रमण का प्रकोप कम हो जाता है।

थैलाबंदी की विधि

अमरूद में थैलाबंदी के लिए 18 × 24 सें.मी. माप का अखबार, ब्राउन पेपर बैग या बटर पेपर बैग का प्रयोग किया जाता है। भारत के अधिकतर भागों में अमरूद की जाड़े या मृग बहार की फसल ली जाती है। इसके फलों की थैलाबंदी के लिए उपरोक्त माप का पेपर बैग लेकर फल टिकाव के 25-35 दिनों के बाद या 20-25 मि.मी. के आकार के फलों की सितंबर में थैलाबंदी की जाती है। फल को बैग पहनाकर धागे की सहायता से बांध दिया जाता है। अखबार का पेपर थैला/बैग, सस्ता तथा सुलभ होता है। यदि पेपर बैग बरसात में खराब हो जाये तो नया बैग बदल देना चाहिए। पेपर बैग के प्रयोग से फल द्वारा वाष्पीकृत पानी निकल जाता है तथा वायु संचार पर्याप्त रहता है, जिससे फल खराब नहीं होते हैं।

अखबारी कागज में फल परिपक्वता उपरांत

ललित अमरूद का थैलाबंदी किया गया फल

बैग का प्रकार

फल थैलाबंदी के लिए कई तरह के बैग जैसे-पार्चमेंट पेपर बैग, नेटेड फोम ट्यूब बैग, कागज, पॉलीबैग, न्यूजपेपर आदि को व्यावसायिक स्तर पर उपयोग किया

ललित प्रजाति का थैलाबंदी फल शीघ्र तैयार

फल की तुड़ाई

अमरूद का फल 140-150 दिनों बाद पककर तैयार होता है। फल जब पूर्ण रूप से पक जाता है तथा इसका रंग हरे से हल्का पीला होने लगता है, तब माना जाता है कि यह अब तुड़ाई के लिए तैयार है। अमरूद की तुड़ाई सुबह-सुबह कर फलों को बैग से निकालकर डिब्बाबंदी कर इनका विक्रय किया जाता है।

देर से तैयार लालिमा प्रजाति का फल

परिपक्वता उपरांत श्वेता किस्म का फल

जाता है। पॉलीबैग को नेटेड फोम ट्यूब के साथ प्रयोग किया जाता है। पॉलीबैग को सामान्यत: दोनों कोनों पर काट दिया जाता है, जिससे पानी आदि थैले से बाहर निकल जायें।

फल की गुणवत्ता

थैलाबंदी किया गया फल आकार में बड़ा एवं आकर्षक होता है। सामान्यत: मृग बहार का फल 180-350 ग्राम तक होता है। ललित किस्म का फल पीला, बड़े आकार का दाग एव धब्बारहित होता है। फल लिफाफे के अंदर बंद होने के कारण अंदर तापमान कम होता है तथा वाष्पोत्सर्जन द्वारा कम पानी का ह्रास होता है, इस कारण फल अधिक भार वाला होता है। थैलाबंद फल में विटामिन 'सी' की मात्रा भी अधिक होती है। बरसात के दौरान फलों पर अधिकतर एंथ्रेक्नोज के धब्बे पड़ जाते हैं, जो इसकी गुणवत्ता को कम कर देते हैं। थैलाबंदी से फल की वृद्धि के दौरान फल को किसी तरह की चोट से बचाया जा सकता है और फल की गुणवत्ता भी उत्तम होती है।

फल की थैलाबंदी के लिए बैग की कीमत 20-60 पैसे/बैग होती है तथा एक श्रमिक सामान्यत: 500-600 फलों की थैलाबंदी कर सकता है। एक दिन में सामान्यत: प्रति बैग लगाने का खर्च 1-1.50 रुपये प्रति फल होता है। प्रति कि.ग्रा. फल का दाम 80-100 रुपये होता है, जबकि बिना थैलाबंदी का फल रुपये-30-40/कि.ग्रा. की दर से बेचा जाता है। इस प्रकार यदि कृषक इस तकनीक का प्रयोग करते हैं, तो 3-4 गुना अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

अमरूद का थैलाबंदी किया गया फल सामान्यत: 140-150 दिनों में तैयार हो जाता है। अखबार के बैग से थैलाबंदी सस्ती पड़ती है, लेकिन 3-4 वर्षा के उपरांत फटने की आशंका रहती है। परिपक्व फल पूर्ण आकार ले लेता है और बैग के ऊपर से देखकर इसके तैयार होने का अंदाजा लग जाता है। कई स्थानों पर अमरूद का रंग पीला होने पर तुड़ाई की जाती है। इस तरह का फल तुरंत खाने योग्य होता है, परन्तु इसकी भण्डारण क्षमता कम होती है।

अमरूद का परिपक्व फल हल्का हरा या हरा-पीला दिखने पर तोड़ने की सबसे उत्तम अवस्था है। अखबार या अन्य पेपर बैग में तुड़ाई पूर्व थैलाबंदी से फल की गुणवत्ता अधिक होती है तथा फल चिकना, एक तरह का हल्का पीला रंग तथा जाड़े में फल पर लाल रंग की आभा भी बन जाती है। पेपर थैलाबंदी से फल की उत्तम गुणवत्ता, बैग के अंदर सूक्ष्म जलवायु के परिवर्तन के कारण होती है। फल थैलाबंदी तकनीक किसानों के लिए इकोफ्रेंडली एवं कम खर्च में गुणवत्ता सुधार के लिए सर्वोत्तम है। ■

बिना थैलाबंदी किये हुए अमरूद के फल

सारणी 2. अमरूद के थैलाबंद फल की गुणवत्ता

क्र. सं.	गुण	अमरूद की थैलाबंदी फल किस्म ललित	अमरूद की थैलाबंदी फल किस्म श्वेता	बिना थैलाबंदी किया हुआ फल
1	फल का भार (ग्राम)	190-325	170-320	160-175
2	लंबाई (मि.मी.)	65-73	6.5-8.0	53
3	चौड़ाई (मि.मी.)	73-84	7.0-8.8	56-68
4	कुल घुलनशील ठोस डिग्री ब्रिक्स	9-11	10-11	8-10
5	'ए' ग्रेड फलों की संख्या (प्रतिशत में)	60-75	180-195	30-40
6	एस्कार्बिक अम्ल (मि.ग्रा./100 ग्राम फल)	178-190	0.19-0.25	110-165
7	ट्राइट्रेबल एसिडिटी (प्रतिशत)	0.20-0.27	65-75	0.28-0.37
8	लाभ-लागत का अनुपात	1:5	5-10	1:2.7

न्यूट्री-गार्डन से आय

कुमारी शुभा*, **अनिर्बाण मुखर्जी***, **उज्ज्वल कुमार**** और **तन्मय कुमार कोले***

न्यूट्री-गार्डन, किचन गार्डन का ही एक विकसित रूप है, जिसमें सब्जियों, फलों, जड़ी-बूटियों, मसालों और औषधीय पौधों को भोजन और आय के पूरक स्रोत के रूप में उगाया जाता है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए इससे प्राप्त उपज परिवार के लिए आहार में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है और कई अन्य लाभ, विशेष रूप से महिलाओं के लिए प्रदान कर सकती है। न्यूट्री-गार्डन पोषण सुरक्षा में सुधार करने में मदद कर सकता है। महिलाओं के लिए यह आय का एक छोटा लेकिन निरंतर स्रोत प्रदान करता है। महिलाओं और बच्चों की भागीदारी से व्यवस्थित रूप से घर के पिछवाड़े में सब्जियों और फलों की उपज में वृद्धि देखी जा सकती है। न्यूट्री-गार्डन वर्षभर पौष्टिक सब्जियों की निरंतर आपूर्ति प्रदान करता है। इससे महिलाओं में अल्पपोषण की समस्या दूर की जा सकती है।

भारत गरीबी, खाद्य असुरक्षा और अल्पपोषण के तिहरे बोझ से पीड़ित है। कैलोरी सेवन में घरेलू स्तर के आंकड़े यह बताते हैं कि देश की आबादी में औसत कैलोरी की खपत पिछले 20 वर्षों में कम हुई है (एनएसएसओ, वर्ष 2017)। भारत की अल्पपोषित जनसंख्या लगातार बढ़ रही है एवं खाद्य कीमतों में निरंतर बढ़ोतरी के कारण

पोषण वाटिका

स्थिति ज्यादा खराब हो गई है। इसलिए खाद्य और पोषण सुरक्षा प्राप्त करना भारत जैसे विकासशील देशों के लिए प्रमुख उद्देश्यों में से एक रहा है। सब्जियों पर आधारित न्यूट्री-गार्डन (पोषक वाटिका) पोषण का सबसे सस्ता स्रोत है, जो तिहरे बोझ को कम करने के लिए सक्रिय भूमिका निभा सकता है। किचन गार्डन पोषणयुक्त सब्जियां और पौष्टिक आहार प्राप्त करने का सबसे सस्ता, सुरक्षित और प्राकृतिक तरीका है।

जब मानव ने जमीन पर जुताई करना सीखा तो वे जनजातियों या उपनिवेशों में रहते

*वैज्ञानिक; **प्रधान वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, भाकृअनुप का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना (बिहार)

संतुलित आहार के लिए विविध सब्जियां

सारणी 1. सतत विकास में न्यूट्री-गार्डन का योगदान

क्र.सं.	लक्ष्य	न्यूट्री-गार्डन की भूमिका
1	निर्धनता नहीं	विशेष रूप से महिलाओं के लिए आय का एक छोटा लेकिन निरंतर स्रोत उत्पन्न करना।
2	शून्य भुखमरी	पौष्टिक आहार का निरंतर और सबसे सस्ता स्रोत।
3	अच्छी सेहत और रहन-सहन	महिलाओं और छोटे बच्चों के लिए संतुलित आहार का स्रोत और पूरे परिवार का अच्छा स्वास्थ्य सुनिश्चित करना।
4	गुणवत्ता शिक्षा	पोषणयुक्त सब्जियां प्रदान करना, जो कम उम्र में मस्तिष्क के विकास को बेहतर बनाती हैं और पारिवारिक आय को पूरा करती हैं। इससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने में मदद मिलती है।
5	लैंगिक समानता	न्यूट्री-गार्डन के अधिशेष उपज को बेचना, जिससे महिलाओं के लिए आय का एक स्रोत उत्पन्न होता है।
6	सम्मानीय कार्य एवं आर्थिक विकास	विशेषकर महिलाओं के लिए ग्रामीण क्षेत्र में उद्यमिता विकास के अवसर प्रदान करना।
7	स्थायी शहर और समुदाय	ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों को हरा-भरा करने में योगदान करना एवं जलवायु और आपदा से लचीलापन बढ़ाने में मदद करना।
8	सतत् उपभोग और उत्पादन	न्यूट्री-गार्डन घरों में सब्जियों की निरंतर आपूर्ति प्रदान करने और पोषक चक्र पूरा करने में मदद करता है।
9	जलवायु क्रिया	यह पारिवारिक स्तर के लचीलेपन और जलवायु से संबंधित जोखिमों और प्राकृतिक आपदाओं के लिए अनुकूलन क्षमता को मजबूत करता है।

सारणी 2. सब्जियों के स्वस्थ संयोजन की सूची

क्र.सं.	संयोजन	लाभ
1	पालक और नीबू	नीबू में मौजूद विटामिन 'सी' पालक से प्राप्त आयरन के अवशोषण को बढ़ाने में मदद करता है।
2	गोभी और शिमला मिर्च	शिमला मिर्च का विटामिन 'सी' गोभी के अवशोषण को बढ़ाने में मदद करता है।
3	टमाटर और जैतून का तेल	स्वस्थ, जैतून के तेल की तरह मोनोअनसैचुरेटेड वसा लाइकोपिन (वसा घुलनशील विटामिन) के अवशोषण को बढ़ाने में मदद करता है।
4	मूली और गाजर	गाजर शरीर को आंतरिक रूप से शुद्ध करती है और मूली में प्राकृतिक एंटी-फंगल गुण होते हैं। इसलिए इनका संयोजन बहुत शक्तिशाली है।
5	हरी पत्ती और अदरक	पत्तेदार साग जैसे केल और पालक फाइबर से भरे होते हैं और अदरक न केवल बढ़िया स्वाद देती है, बल्कि यह पाचन में भी सहायक है।
6	राजमा और शिमला मिर्च	शिमला मिर्च में मौजूद विटामिन 'सी' राजमा की फलियों से आयरन के अवशोषण को बढ़ाने में मदद करती है।

सब्जी फसल के लिए चयन मापदंड

- परिवार के सदस्यों, विशेषकर महिलाओं और बच्चों द्वारा पसंद की गई सब्जियों का चयन करें।
- सब्जियों की एक विविध शृंखला का चयन करें, क्योंकि सभी में अलग-अलग गुण होते हैं।
- ऐसी सब्जियों का चयन करें, जो सहिष्णु हों, उगाने में आसान हों, स्थानीय जलवायु और मृदा के अनुकूल हों।
- सब्जियों की ऐसी किस्में उगायें, जो आम कीटों और रोगों के प्रति सहिष्णु हों।
- चयनित सब्जियों की गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री (बीज, कलम, अंकुर और कंद) स्थानीय रूप से उपलब्ध होनी चाहिए और परिवार के सदस्यों को आसानी से उपलब्ध हो सकें।
- कृषि जैव विविधता और सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने के लिए उन्नत किस्मों और परंपरागत प्रजातियों को भी शामिल करें।
- नई पोषक फसल प्रजातियों का स्वीकार्यता के लिए परीक्षण किया जा सकता है और यह बागवानी फसलों के लिए उत्साह पैदा कर सकता है।

100 वर्ग मीटर के न्यूट्री-गार्डन का मॉडल

थे और प्रवासी प्रकृति के थे। एक जनजाति भूमि के एक टुकड़े की तब तक जुताई करती थी, जब तक कि उस भूमि की उत्पादकता खत्म न हो जाए और फिर वे दूसरी नवीन

ताजी पत्तेदार सब्जियां विटामिन 'ए', आयरन और फोलिक एसिड का अच्छा स्रोत

भूमि पर जाते थे। प्रत्येक जनजाति अपना भोजन स्वयं उगाती थी और ये बाग सही मायने में किचन गार्डन थे।

न्यूट्री-गार्डन के महत्वपूर्ण घटक

न्यूट्री-गार्डन उत्पाद

- पोषक तत्वों से भरपूर सब्जियों की फसलों की एक विविध शृंखला, पारंपरिक और बेहतर किस्मों का मेल, मौजूदा पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल।
- उत्पादन की बाधाओं को दूर करने के लिए अच्छी कृषि प्रथाओं पर आधारित उद्यान प्रबंधन।

पोषण

पोषण और स्वास्थ्य के लिए सब्जियों के महत्व के बारे में ज्ञान और अच्छे खाद्य पदार्थों के सेवन के बारे में जानकारी का होना आवश्यक है। जैसे-खाद्य तालमेल (सारणी-2 में विवरण)।

न्यूट्री-गार्डन से पत्तेदार सब्जियां

न्यूट्री-गार्डन की रूपरेखा

वर्षभर अधिकतम उत्पादन और सब्जी की निरंतर आपूर्ति को ध्यान में रखते हुए, 100 मीटर के न्यूट्री-गार्डन के लिए एक योजना तैयार की गई है। इसके मॉडल के माध्यम से, वर्ष 2010 में भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सब्जी के उपभोग के लिए सिफारिश का पालन किया जा सकता है, अर्थात प्रति व्यक्ति प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जी, जिसमें 50 ग्राम पत्तेदार सब्जियां, 50 ग्राम कंदी सब्जियां और 200 ग्राम फल शामिल होती हैं।

योजना की विशेषताएं

बारहमासी पौधों को बगीचे के एक तरफ स्थित होना चाहिए, ताकि वे मौसमी सब्जियों के साथ पोषण के लिए प्रतिस्पर्धा करने वाली अन्य फसलों के साथ न आएं और सब्जियों को छाया में न रखें। एक बार जब ये बारहमासी सब्जियां लग जाएं, तो बहुत कम देखभाल की आवश्यकता होती है और सब्जियों की भरपूर मात्रा वर्ष-दर-वर्ष कम अतिरिक्त लागत या श्रम से प्राप्त होती रहती है।

पोषण बढ़ाने के लिए खाद्य संयोजन

नए साक्ष्य बताते हैं कि कुछ खाद्य पदार्थ जिनके स्वाद एक साथ अच्छे लगते हैं, वे एक-दूसरे के साथ पोषण के सकारात्मक तरीकों से भी परस्पर प्रभाव डालते हैं। दूसरे शब्दों में, जितना लाभ एक खाद्य से होगा, उससे ज्यादा लाभ संयोजन में उपभोग किए गए दो विशेष खाद्यों में होगा। रोग वैज्ञानिक डेविड आर. जैकब्स इस घटना को 'खाद्य संयोजन' के रूप में संदर्भित करते हैं। खाद्य संयोजन के कुछ उदाहरण सारणी-2 में प्रस्तुत किए गए हैं।

किचन गार्डन का सबसे अधिक किफायती उपयोग

- अनुक्रमण और एक साथ निरंतर फसल प्रतिरूप का पालन करवाना
- मेड़ों का समुचित उपयोग, जो कंद-मूल फसलों की क्यारियों को अलग करता है
- पगडंडी के एक तरफ खूंटे से बंधे हुए टमाटर के पौधे एवं दूसरी तरफ चौलाई एवं दूसरी पत्तेदार सब्जियां
- गहरी जड़ वाली सब्जी फसलों के बाद उथली जड़ वाली सब्जियों की फसलों को लगाया जाना चाहिए (उदाहरण-टमाटर-पत्तेदार सब्जियां-कद्दूवर्गीय सब्जियां)
- फलीदार फसलों के बाद गैर-फलीदार फसलों को लगाया जाना चाहिए और इसके विपरीत क्रम से (जैसे-मटर-भिंडी-बोड़ी)
- लेग्यूमिनस सब्जी फसलों के बाद गैर-लेग्यूमिनस सब्जी फसलों को लगाया जाना चाहिए
- लंबी अवधि की फसलों के बाद छोटी अवधि की फसलों को लगाया जाना चाहिए (उदाहरण के लिए बैंगन-धनिया)
- खाद के गड्ढों को बगीचे के दो कोनों में रखा जाता है। वे बगीचे के कचरे और रसोई के कचरे (जिसमें राख और अपशिष्ट शामिल हैं) के लिए हैं, जिन्हें इन गड्ढों में फेंक दिया जाता है। यह न्यूट्री-गार्डन के लिए खाद में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए लंबे समय तक उपयुक्त होगा

बीजीय मसाला फसलों में बूंद-बूंद सिंचाई

मोती लाल मीणा* और **धीरज सिंह***

भारत केवल 2.5 प्रतिशत भूभाग एवं 4 प्रतिशत जल संसाधनों के साथ दुनिया की 16 प्रतिशत आबादी का खाद्य पोषण करता है। बारिश एवं बर्फबारी के रूप में वर्षा, देश के लिये 4000 खरब लीटर ताजा जल प्रदान करती है। इस उपमहाद्वीप में ताजा पानी का अधिकांशतः हिस्सा अपवाह के माध्यम से समुद्र एवं महासागरों में चला जाता है। इस पानी का कुछ हिस्सा मृदा के माध्यम से जमीन में भूजल के रूप में मौजूद रहता है। इसके अलावा वर्षा का एक छोटा सा हिस्सा अंतर्देशीय जल निकायों में संग्रहित हो जाता है। कुल 1869 खरब लीटर उपलब्ध पानी में से केवल 1122 खरब लीटर पानी को ही स्थलाकृति की समस्या एवं असमान वितरण के कारण दोहित किया जा सकता है।

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में सामान्यतः 250 से 300 मि.मी. वार्षिक वर्षा होती है, जो बहुत ही कम है। यहां की रेतीली मृदा में पानी की मात्रा बहुत कम समय तक ही रह पाती है। वाष्पीकरण की मात्रा लगभग 72 प्रतिशत है, जिससे वर्षाजल जल्दी सूख जाता है व नमी की मात्रा बहुत ही कम होती है। सामान्य रूप से लगभग 30-35 वर्ष पहले तक ज्यादातर किसानों द्वारा सिंचाई के लिए खुले कुंओं का उपयोग किया जाता था। उस समय बिजली की उपलब्धता हर खेत में नहीं होती थी, तब किसान कुंए से सिंचाई करने के लिए डीजल पम्प का प्रयोग करते थे।

*भाकृअनुप-काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़-306401 (राजस्थान)

गैर-संस्थागत प्रशिक्षण लेते कृषक

पानी को तालाब या बांध से निकालने के लिए डीजल पम्प का ज्यादातर उपयोग होता था। समय-समय पर परिवर्तन होने के साथ बिजली की मोटर से पानी दोहन होने लगा तथा ट्यूबवेल से अंदर का पानी अधिक मात्रा में दोहन होने लगा, जिससे कुंए का जलस्तर नीचे गिर गया और पानी की गुणवत्ता पर भी प्रभाव पड़ा। पानी खारा होने लगा व जमीन की उपज भी कम होने लगी। सारणी-1 में पाली जिले के गांव बेड़कला में पिछले 10 वर्षों में कुंओं के जलस्तर व वर्षा जल की मात्रा को दर्शाया गया है।

ड्रिप सिंचाई

बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति को जल एवं पोषक तत्वों के प्रयोग की दक्षता, उपज एवं

सारणी 1. बेड़कला गांव में कुंए का जलस्तर एवं वार्षिक वर्षा जल (2005-06 से 2017-18)

क्र. स.	वर्ष	जलस्तर (फीट में)	वार्षिक वर्षा (मि.मी.)
1	2006-07	10.5	550-600
2	2007-08	09.5	450-500
3	2008-09	11.8	400-430
4	2009-10	12.9	386-400
5	2010-11	15.8	350-370
6	2011-12	18.3	300-330
7	2012-13	25.6	180-190
8	2013-14	45.2	240-260
9	2014-15	60.2	200-230
10	2015-16	82.3	150-155
11	2016-17	90.4	687-701
12	2017-18	86.8	230-260
13	2018-19	90.9	300-350

स्रोतः कृषि विभाग, पाली-मारवाड़

लाभ में वृद्धि के लिए जाना जाता है। इस सिंचाई पद्धति के अंतर्गत सतही ड्रिप, उप-सतही ड्रिप एवं माइक्रो स्प्रिंक्लर आदि तकनीकें आती हैं। इस प्रणाली द्वारा जल तथा उर्वरक की हानि में कमी होने के कारण उर्वरक एवं जल उपयोग की दक्षता अधिक (80-90 प्रतिशत) पायी जाती है। ड्रिप सिंचाई से 40-70 प्रतिशत तक जल की बचत की जा सकती है। सब्जियों के लिए 2 लीटर प्रति घंटा जल प्रवाह वाले ड्रिपर उपयुक्त पाये गये हैं। ड्रिप सिंचाई द्वारा पौधों के जड़ क्षेत्र में उचित वातावरण एवं नमी बनाये रखने के कारण पौधों की वृद्धि अच्छी होती है एवं खरपतवार तथा रोगों का प्रकोप कम होता है। इसके साथ ही उपज की गुणवत्ता में सुधार एवं उत्पादकता में वृद्धि देखी गई है। ड्रिप सिंचाई के प्रयोग द्वारा श्रम, जल, उर्वरक एवं रसायनों की बचत के कारण खेती की लागत में कमी होती है।

जीरा फसल में बूंद-बूंद सिंचाई से खुशहाल किसान

भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीजीय मसाला अनुसंधान केन्द्र, तबीजी, अजमेर में किये गये प्रयोगों में जीरा, सौंफ, मेथी, सौआ, अजवायन और रबी मौसम की धनिया में ड्रिप सिंचाई के प्रयोग से क्रमशः 70 प्रतिशत, 60 प्रतिशत, 65 प्रतिशत, 55 प्रतिशत, 62 प्रतिशत और 43 प्रतिशत तक जल की बचत दर्ज की गई है। ड्रिप सिंचाई के साथ प्लास्टिक पलवार का प्रयोग करने से 15-35 प्रतिशत तक अतिरिक्त जल की बचत के साथ जल उपयोग की दक्षता में काफी सुधार हुआ। भारत में लगभग 22.6 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में सब्जियों एवं फलों की सिंचाई ड्रिप के माध्यम से होती है, जबकि पूरे देश में इसकी क्षमता 60 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में सब्जियों की सिंचाई करने की है। किसानों को ड्रिप

बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति से लाभ

सौंफ की फसल में बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति

- फसल को समान रूप से जड़ों तक पानी मिलने पर स्वस्थ पौधे होते हैं, जिससे फसल होती है रोगमुक्त
- फसल एवं सब्जियों के पौधों को आयु एवं अवस्था के अनुसार जल एवं पोषक तत्व उपलब्ध होने से पैदावार में बढ़ोतरी
- खेत में मृदा भुरभुरी रहने से जड़ों को समुचित अनुपात में हवा, पानी एवं पोषक तत्व उपलब्ध होने से पौधों का अच्छा विकास
- पौधों के आसपास नमी सीमित क्षेत्र में रहती है, इसलिए रोग एवं कीट के प्रकोप की आशंका कम रहती है। बिजली की अनियमितता में भी कम समय में विस्तृत क्षेत्र में सिंचाई संभव
- ऑटोमेशन से देर रात्रि में बिजली आने पर ठंडी रातों में खेत में जाने का झंझट खत्म
- खेत में फालतू घास और खरपतवारों की समस्या में कमी
- फसलों में बम्पर उत्पादन के साथ-साथ फलों के रंग एवं गुणवत्ता में भी सुधार आता है, जिससे फसल का उचित भाव मिलना संभव
- पानी की भारी बचत होने से सीमित पानी में अधिक क्षेत्र में खेती संभव
- ड्रिप सिंचाई के साथ रोपाई करने पर पौधों का बहुत कम सूखना
- ऊंचे-नीचे, उबड़-खाबड़ खेत में भी एक समान सिंचाई संभव

अजवायन की लहलहाती फसल

सिंचाई प्रणाली लगाने के लिए सरकार द्वारा अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जा रहा है। ड्रिप सिंचाई का प्रयोग ऊबड़-खाबड़ जमीन पर अल्प गुणवत्ता वाले जल के साथ मृदा की लवणता का प्रबंधन करने के लिए भी किया जा सकता है। जल प्रयोग की दक्षता एवं सब्जी उत्पादकता में सुधार लाने के लिए पौधों को उचित मात्रा में एवं समय पर जल और उर्वरक प्रयोग करने के लिए ड्रिप सिंचाई का बहुत महत्व है।

सफलता की कहानी-गांव बेड़कला

राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में पाली जिले का गांव बेड़कला जिला मुख्यालय से 80 किलोमीटर की दूरी पर है। यहां पर वार्षिक वर्षा लगभग 250 मि.मी. तक होती है, जिसका फसलों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यहां रबी में बीजीय मसाला फसलों की सिंचाई कुंओं द्वारा होती है। लगातार वर्षा कम होने पर कुंओं का जलस्तर गिरने से किसानों को भारी नुकसान होने लगता है। वर्षा की कमी और कुंओं में पानी की कमी को देखते हुए काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली ने गांव में जल संरक्षण की उन्नत तकनीकियों पर गैर-संस्थागत प्रशिक्षणों का आयोजन किया, जिसमें गांव के लगभग 150 किसानों ने भाग लिया। इसके बाद मसाला फसलों में जल प्रबंधन पर संस्थागत 15 दिवसीय प्रशिक्षण का आयोजन कृषि विज्ञान केन्द्र परिसर में किया गया, जिसमें 45 किसानों ने भाग लिया।

इस प्रशिक्षण में व्याख्यान द्वारा उपनिदेशक, कृषि (विस्तार) पाली ने किसानों को बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति की जानकारी उपलब्ध करवाई तथा इस पर सरकार की ओर से मिलने वाले अनुदान के बारे में भी बताया। उनको प्रायोगिक तौर पर बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली वाले खेतों का भ्रमण करवाया गया। वर्तमान में कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली के प्रक्षेत्र पर सभी फसलों की सिंचाई बूंद-बूंद पद्धति द्वारा की जा रही है। किसानों के समूह ने प्रक्षेत्र का भ्रमण किया और उसी समय 35 किसानों ने अपने खेत में बीजीय

जीरा की फसल में बूंद-बूंद पद्धति से सिंचाई

सारणी 2. बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति से जल बचत एवं उपज में वृद्धि

क्र.स.	फसल	जल बचत (प्रतिशत)	उत्पादन (क्विंटल/हैक्टर)	
			परंपरागत विधि	बूंद-बूंद विधि
1	जीरा	70.5	06.7	11.4
2	मेथी	65.0	12.2	16.6
3	सौंफ	60.5	13.8	18.3
4	अजवायन	60.5	06.3	09.4
5	धनिया	65.5	15.3	17.6

मसाला फसलों पर बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति अपनाने का निर्णय लिया। इसके लिए इन किसानों का परिचय कृषि पर्यवेक्षक से करवाया गया तथा बूंद-बूंद पद्धति लगवाने की प्रक्रिया के बारे में सभी जानकारियां उपलब्ध करवायी गईं। इसके बाद गांव में शुरुआत में 35 किसानों ने अपने प्रक्षेत्र पर बीजीय मसाला फसलों में बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति अपनायी। इन किसानों ने सबसे पहले जीरा, मेथी, सौंफ एवं अजवायन की फसलों में बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति से सिंचाई की। इससे किसानों को उत्पादन के साथ-साथ श्रम, खरपतवार से निजात, गुणवत्ता, जल बचत सभी में लाभ मिला। बीजीय मसाला फसलों को पानी कम मात्रा में चाहिए जैसे-जीरा के लिए खेत में पानी भरा नहीं रहना चाहिए। इसकी फसल में ज्यादा पानी देने पर अधिक जल भराव होने से विल्ट रोग का प्रकोप हो जाता है। इस स्थिति में जीरा की फसल के लिए बूंद-बूंद सिंचाई अधिक लाभकारी है।

बीजीय मसाला फसलों को जितनी मात्रा में जल की आवश्यकता होती है उनमें उसी मात्रा में जल उपलब्ध हुआ, जिससे फसल रोगों व खरपतवारों से सुरक्षित रही। इस प्रकार वर्ष 2014 में गांव के सभी 455 किसानों ने अपने प्रक्षेत्र पर बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति को अपनाया और कम पानी से अधिक लाभ कमाया। किसानों को इस विधि द्वारा मिलने वाला लाभ सारणी-2 में दर्शाया गया है। गांव बेड़कला को 2016 में कृषि विभाग, राजस्थान सरकार की तरफ से पुरस्कृत किया गया। वर्तमान में गांव के सभी किसान बीजीय मसाला फसलों, विभिन्न फसलों एवं सब्जियों की खेती बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति से करते हैं। इससे उनकी लागत कम एवं आय और उत्पादन में अधिक वृद्धि हुई। इस गांव की सफलता को देखते हुए जिले के आसपास के गांवों के कृषक भी बूंद-बूंद सिंचाई पद्धति अपनाकर फसल उत्पादन करने लगे हैं। ■

मेथी की फसल

पहचानिए और सुधारिए आम में बोरॉन की कमी

के.एन. तिवारी* और **राकेश तिवारी****

लगातार प्रमुख पोषक तत्वों के प्रयोग से लिया गया अधिकाधिक उत्पादन गौण और सूक्ष्म पोषक तत्वों के दोहन का कारण बन जाता है। इसी कारण अब स्पष्ट रूप से आम में बोरॉन की कमी देश के विभिन्न भागों में देखने को मिल रही है। उत्तर प्रदेश में यह समस्या अत्यंत गंभीर है। नए लगाए गए बाग, पुराने बाग और छोटे पैमाने पर लगाए गए आम के वृक्षों में इसकी कमी से न केवल उत्पादन घट रहा है, बल्कि उत्पाद की गुणवत्ता भी बुरी तरह प्रभावित हो रही है। किसान बोरॉन की कमी के लक्षणों से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं। ऐसी दशा में कृषि निवेश विक्रेता उन्हें कीट व रोगनाशी प्रयोग करने की सलाह देकर असलियत को छिपाने का प्रयास कर रहे हैं। इससे किसानों का पैसा तो खर्च हो जाता है परंतु उन्हें कोई लाभ नहीं मिलता। इसी आशय से प्रस्तुत लेख में आम में बोरॉन की कमी के लक्षण और उपचार पर चर्चा की जा रही है, ताकि बागवान इस जानकारी से लाभान्वित होकर आम की गुणवत्तापूर्ण उपज प्राप्त करने में सफल हो सकें।

आम को फलों का राजा कहा जाता है। पूरी दुनिया में प्रत्येक वर्ष लगभग साढ़े तीन करोड़ टन आम पैदा होता है। इसमें से लगभग डेढ़ करोड़ टन अकेले भारत में पैदा होता है। भारत के बाद क्रमश: चीन, मैक्सिको, थाइलैंड और पाकिस्तान का स्थान आता है। आम की खेती उष्ण एवं समशीतोष्ण दोनों

बोरॉन की कमी से कलियों में मुरझान

बोरॉन की कमी का सही उपचार

बोरॉन की कमी की पुष्टि होने पर वृक्षों की आयु के अनुसार 5-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बोरेक्स का प्रयोग मृदा में करना चाहिए। तत्व रूप में एक हैक्टर क्षेत्रफल के लिए 1-1.5 कि.ग्रा. बोरेक्स का प्रयोग करना चाहिए। अच्छा हो, 10 से 15 कि.ग्रा./हैक्टर बोरेक्स उर्वरक का प्रयोग सड़ी कम्पोस्ट खाद के साथ किया जाए। इसे एनपीके उर्वरकों के साथ अच्छी तरह मिलाकर थाले के चारों ओर डालकर मृदा में एक फीट गहराई तक अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अलावा बोरॉन का पर्णीय छिड़काव शीघ्र असर दिखाता है। पर्णीय छिड़काव के लिए 0.25-0.30 प्रतिशत गाढ़ा (2.5 से 3 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी) घोल बनाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। यदि पूरी तरह सुधार न हो तो छिड़काव जारी रखें।

प्रभावित आम की गुठली और फल

*वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक, विरामखंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उत्तर प्रदेश); **विषय वस्तु विशेषज्ञ (मृदा विज्ञान), कृषि विज्ञान केंद्र, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, हस्तिनापुर, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

बोरॉन के कार्य

यह कोशिका विभाजन एवं कोशिका की वृद्धि को प्रोत्साहित करता है। बोरॉन कोशिका झिल्ली की पारगम्यता बढ़ाता है और कार्बोहाइड्रेट के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ ही कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण में सहयोग देता है। बोरॉन प्रकाश-संश्लेषण, प्रोटीन-संश्लेषण, कोशिकाओं की वृद्धि, श्वसन क्रिया, शर्करा-स्टार्च का साम्य नियंत्रण और पेक्टिन संश्लेषण में सहायक होता है। यह विभिन्न पोषक तत्वों के वाहक का कार्य भी करता है। बोरॉन, कैल्शियम के अवशोषण और पौधों द्वारा उसके उपयोग को प्रभावित करता है। इसके साथ ही यह पौधों में पोटेशियम-कैल्शियम अनुपात को नियमितता प्रदान करता है।

बोरॉन की कमी से ग्रस्त पत्तियां

बोरॉन की कमी से फलों के गूदे का रंग गहरा तथा गूदा अत्यधिक ढीला व मुलायम

प्रकार की जलवायु में की जाती है। इसकी खेती समुद्र तल से 600 मीटर की ऊंचाई तक सफलतापूर्वक होती है। इसके लिए 23.8 से 26.6^0 सेल्सियस तापमान अति उत्तम होता है। आम की बागवानी सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है। इसकी अच्छी उपज के लिए वृक्षों को पोषक तत्वों की सही खुराक मिलना आवश्यक होता है। ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि आम के बागों में बोरॉन की कमी बड़े पैमाने पर देखने को मिल रही है। इसकी पुष्टि 60 के दशक में आम की अल्फान्सो नामक किस्म में महाराष्ट्र से हुई।

बोरॉन कमी से गूदा खोखला, कड़ा, शुष्क और उसका रंग भूरा हो जाता है और इसे 'स्टोन फ्रूट' भी कहा जाता है

कालांतर में इसका विस्तार अब बड़े पैमाने पर देश के सभी क्षेत्रों में हो गया है।

बोरॉन की कमी की पहचान

मृदा में बोरॉन की कमी होने पर इसके लक्षण प्रायः नई आम की पत्तियों पर दिखाई देते हैं। डालियों के अग्रभाग की विकासशील कलियां मर जाती हैं। इसकी पत्तियां मोटी एवं चमड़े की तरह कड़ी होकर ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। फूल सूखने लगते हैं और फल कम बनते हैं और उनके गिर जाने की समस्या उत्पन्न हो जाती है, जिससे उपज घट जाती है। मृत कली के पास से अनेक शाखाएं गुच्छों में निकलती हैं।

आम के बागानों में बोरॉन की कमी की गंभीर समस्या से निजात पाने के लिए बोरॉन का मृदा में प्रयोग अथवा पर्णीय छिड़काव अवश्य करें। इससे न केवल उत्पादन में वृद्धि होगी, बल्कि उत्पाद की गुणवत्ता में इजाफा होने से सही बाजार भाव मिलेगा और किसानों की आय में सार्थक वृद्धि होगी।

बोरॉन की कमी से अधिक संख्या में फलों का गिरना

बचाव

फलदार पौधों के प्रमुख रोग एवं उनका निदान

अर्चना उदय सिंह*, **रमेश चन्द**** और **सुभाष चन्द*****

फलोत्पादन से जुड़े बागवानों को अक्सर कीटों और विभिन्न प्रकार के रोगों के अलावा अन्य मौसम संबंधित परेशानियों का सामना करना पड़ता है। प्रस्तुत लेख में प्रमुख फलों के रोगों एवं उनके उपचार पर चर्चा की गई है।

केला

पनामा उकठा

यह रोग कवक से उत्पन्न होता है। इस रोग में सबसे पहले कवक पौधों की पतली व कोमल जड़ों में प्रवेश करता है। बाद में पूरे संवहनी तंत्र में फैल जाता है। इससे पौधे में जल व पोषक तत्वों का आवागमन रुक जाता है और अंत में पौधे सूखने लगते हैं। इससे पौधे की निचली पत्तियां लटककर मुरझा जाती हैं और केवल बीच की पत्ती सीधी रहती है। अंत में प्रभावित पौधे समूचे सूख जाते हैं।

प्रबंधन

- स्वस्थ पौधों का रोपण करना चाहिए।
- प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।
- जल निकासी का उचित प्रबंध करना चाहिए।
- रोगरोधी किस्में उगानी चाहिए।
- प्रभावित भूमि को परती छोड़कर 6 महीने तक पानी भरना चाहिए। केला-धान फसलचक्र अपनाकर यह क्रिया की जा सकती है।
- कंदों को बाविस्टीन 2 प्रतिशत के घोल का 3 मिली प्रति कंद की दर से टीका लगाने से भी अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं।

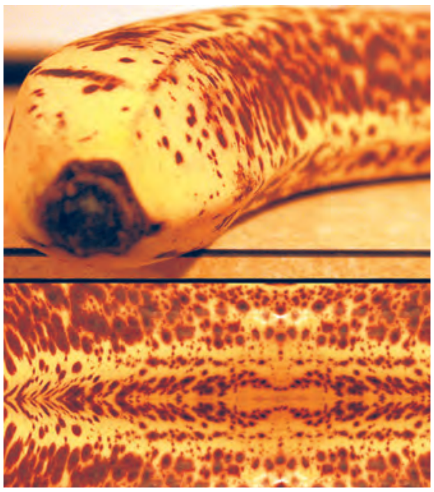

रोगग्रस्त केला

पर्ण लाछन

लक्षण: इस रोग में पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं, जिससे पत्तियां सूखने लगती हैं। यह एक कवकजनित रोग है।

प्रबंधन: इसकी रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 3 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

अमरूद

उकठा रोग

यह रोग कवक द्वारा होता है, जिसके लक्षण बरसात के समय दिखाई पड़ते हैं। इस रोग के कारण वृक्षों की पत्तियां भूरे रंग की हो जाती हैं और वृक्ष मुरझा जाता है। छिलके की सतह बदरंग हो जाती है और प्रभावित वृक्ष की डालियां बारी-बारी करके सूखने लगती हैं। इन डालियों को काटने पर अंदर की कोशिकाएं बदरंग दिखायी पड़ती हैं। उकठा रोग उन क्षेत्रों में अधिक होता है, जहां की मृदा का पी-एच मान 7.5 से अधिक होता है तथा मृदा में नमी होने पर यह रोग अधिक फैलता है।

प्रबंधन

- रोगी पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

अमरूद में उकठा रोग का प्रकोप

- रोगी वृक्षों को निकालने के बाद गड्ढे की मृदा को 3 ग्राम थीरम या एक ग्राम बेनलेट कवकनाशी दवा एक लीटर पानी में घोलकर (लगभग 20 लीटर प्रति गड्ढा) उपचारित करना चाहिए।
- भूमि में चूना, जिप्सम अथवा कार्बनिक खाद मिलाने से इस रोग का प्रकोप कम हो जाता है।
- अमरूद की बागवानी 15-20 वर्ष तक की जानी चाहिए, जिस स्थान पर उकठा रोग का संक्रमण हो गया हो, वहां पुन: इसके बाग 5 से 8 वर्षों तक न लगाएं।

तना कैंकर

यह रोग भी कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

*सूत्रकृमि विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; **सहायक प्राध्यापक, सूत्रकृमि विज्ञान विभाग; ***सहायक प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान विभाग, नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

तना कैंकर से प्रभावित अमरूद वृक्ष

इसके लक्षण सर्वप्रथम डालियों पर लंबी दरारों के रूप में दिखायी पड़ते हैं। बाद में डालियों की छाल फट जाती है और रोग धीरे-धीरे जड़ की तरफ बढ़ने लगता है। प्रभावित छाल गहरे भूरे रंग की हो जाती है। इसको खुरचने पर भूरे या काले रंग की धारियां छाल के नीचे तक पायी जाती हैं। छाल के फट जाने से पोषक तत्वों का आवागमन रुक जाता है व अंत में वृक्ष सूखने लगता है।

प्रबंधन

- रोगग्रसित डालियों को काटकर जला देना चाहिए तथा कटे भाग पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के घोल अथवा गाय के गोबर का लेप करना चाहिए।
- छंटाई के बाद 2-3 ग्राम ब्लाइटॉक्स-50 को एक लीटर पानी में घोलकर 10-15 दिनों के अंतर पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।
- वर्षा ऋतु में प्रभावित वृक्षों पर कार्बेन्डाजिम की 20 ग्राम मात्रा को 50 लीटर पानी में घोलकर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

आम

चूर्णिल आसिता रोग (पाउडरी मिल्ड्यू)

इस रोग को खैरा रोग भी कहा जाता

चूर्णिल आसिता रोग से ग्रसित आम का बौर

तना गलन रोग

केले का यह रोग *रेडोफोलस सिमिलिस* नामक सूत्रकृमि द्वारा पैदा होता है। आम भाषा में इस रोग के जनक सूत्रकृमि को वरोइंग सूत्रकृमि कहते हैं। यह जड़ों में प्रवेश कर नलिकायें बनाता है तथा पौधों द्वारा मृदा से लिए जाने वाले आवश्यक पोषण तत्वों व नमी के अवशोषण को बाधित कर देता है। तना गलन रोग में सूत्रकृमियों की संख्या अधिक होने से केले के पौधे जमीन पर गिरना प्रारंभ हो जाते हैं।

लक्षण

- फसल पीली व कमजोर दिखाई देने लगती है।
- प्रति एकड़ पौधों की संख्या कम दिखाई देने लगती है।
- पौधे बौने रह जाते हैं तथा फल कम संख्या में व छोटे बनते हैं और पौधे गिरने लगते हैं।
- गिरे हुये पौधों की जड़ों का परीक्षण करने से पता चलता है कि जड़ों पर भूरे व काले रंग के धब्बे लंबाई में बने होते हैं, जिन्हें लीजन कहते हैं।
- जड़ें जमीन में सड़ने लगती हैं।
- ब्लैक हैड, केले का गलन, कंद का गलन व केले का जड़ गलन आदि नामों से भी इस रोग को जाना जाता है।

रोग का फैलाव

पूरे विश्व में अभी तक इस सूत्रकृमि की 11 प्रजातियां खोजी जा चुकी हैं, जिनमें से 9 प्रजातियां केवल ऑस्ट्रेलिया में पायी जाती हैं। भारत में सिर्फ *रेडोफोलस सिमिलिस* नाम की प्रजाति ही पाई जाती है, जो कि सर्वप्रथम केरल में पाई गयी थी। अब यह सूत्रकृमि केरल के साथ-साथ तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, गोवा, महाराष्ट्र, गुजरात तथा मध्य प्रदेश में भी पाया जाता है।

रोकथाम

- यह सूत्रकृमि जड़ के अंदर रहता है। इसलिए इससे प्रभावित फसल की जड़ों को केले के नये पौधे बनाने के लिए किसी भी दशा में प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- केले के कंदों को नये पौधे बनाने के लिए प्रयोग में लाना चाहिए। बोरडेक्स मिश्रण का पेस्ट बनाकर कटे हुए कंदों पर लगाना चाहिए।
- कंदों को गर्म पानी से उपचारित करना चाहिए। इसके लिए 53^0-55^0 सेल्सियस तक पानी को गर्म करें तथा कंदों को 20-25 मिनट तक गर्म पानी में रखें, इसके बाद निकाल लें।
- केले के कंदों को बोने से पहले चिकनी मिट्टी का घोल बनायें। सभी कंदों को उसमें डालकर निकाल लें तथा उन पर कार्बोफ्यूरान दवा 1.2 ग्राम प्रति कंद की दर से छिड़क दें।

है, जो एक फफूंदजनित रोग है। उष्ण नम वातावरण और ठंडी रातों में चूर्णिल आसिता रोग की उग्रता बढ़ जाती है। यह रोग देश के सभी भागों में आम की फसलों को प्रभावित

करता है। शुरुआत में चूर्णिल आसिता रोग नई पत्तियों, फूल की कलियों, छोटे फलों तथा बौर के डंठलों पर धूसर या सफेद पाउडर के रूप में दिखाई पड़ता है। इसका संक्रमण अधिक होने पर पूरा बौर झुलस सकता है। चूर्णिल आसिता रोग का लक्षण दिखाई देने के कुछ ही दिनों के अंदर सभी बौर प्रभावित हो जाते हैं। पुष्प एवं पत्तियां गिर जाती हैं तथा प्रभावित भागों की वृद्धि रुक जाती हैं। यदि इस रोग के संक्रमण के पूर्व फल लग गये हों तो वे अपरिपक्व अवस्था में ही गिर जाते हैं।

प्रबंधन

इस रोग का प्रकोप पुष्प वृन्त पर होता है। इससे बचाव के लिए फूल आने पर तीन बार छिड़काव करना चाहिए। प्रथम छिड़काव 0.2 प्रतिशत घुलनशील गंधक की 2 ग्राम मात्रा को प्रति लीटर पानी में घोलकर व द्वितीय छिड़काव एक मि.ली. ट्राइडीमार्फ को प्रति लीटर पानी में मिलाकर करना चाहिये। पहला छिड़काव बौर निकलते समय तथा दूसरा व तीसरा छिड़काव 10-15 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए।

गुम्मा या गुच्छा रोग

इस रोग से प्रभावित पौधे के शीर्ष भाग पर गुच्छेदार पत्तियां बन जाती हैं व प्रभावित पुष्प मंजरियां भी गुच्छेनुमा हो जाती हैं। इस रोग से ग्रसित पुष्प स्वस्थ मंजरियों की अपेक्षा अधिक मोटे दिखाई देते हैं तथा नर पुष्पों की अधिकता होती है।

प्रबंधन

- गुच्छेनुमा बने पुष्प वृन्तों को काटकर जला देना चाहिए तथा कटे भाग पर गाय के गोबर का लेप कर देना चाहिए।
- अक्टूबर में नेफ्थलीन एसिटिक एसिड की एक मि.ली. मात्रा को 5 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

शीर्ष गुच्छा रोग

यह विषाणुजनित रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियां छोटी होकर गुच्छों का रूप धारण कर लेती हैं। पत्तियों के शीर्ष व किनारे अंदर की ओर मुड़ जाते हैं और पत्तियां मोटी हो जाती हैं। इससे पत्तियों के निचले भाग में मध्य शिरा के साथ गहरी हरी पट्टियां बन जाती हैं। शीर्ष गुच्छा रोग माहूं कीट से फैलता है।

प्रबंधन

- स्वस्थ पौधों के कंदों का चुनाव करना चाहिए।
- बाग को स्वच्छ रखना चाहिए।
- माहूं कीट की रोकथाम के लिए कीटनाशक क्यूनालफॉस दवा का प्रयोग करें।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों को अंतर फसल के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिये।
- प्रभावित पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।

कोयली या काला सिरा रोग

यह रोग आम के उन बगीचों में पाया जाता है, जो ईंट के भट्टों से दो कि.मी. की परिधि में होते हैं। इस रोग के प्रारंभ में प्रभावित फलों की टिप पर भूरे रंग का जल शोषित धब्बा बनता है, जो बाद में गहरे भूरे रंग का हो जाता है। अंत में फल काला होकर सड़ने लगता है। रोग की अधिकता होने पर फल भी फट जाता है।

प्रबंधन

- कोयली रोग से बचाव के लिए आम के बाग को ईंट के भट्टों से दूर लगाना चाहिए।
- भट्टों में 50-70 मीटर ऊंची चिमनियों का प्रयोग करके भी इस रोग के फैलाव को रोका जा सकता है।
- अप्रैल-मई में रोग प्रारंभ होने से पूर्व सोडियम बाईकार्बोनेट या बोरेक्स को 6 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर 2-3 छिड़काव 10 दिनों के अंतराल पर करें।

पपीता

पौध गलन रोग

यह रोग भी कवक द्वारा होता है। पौध गलन रोग उन स्थानों पर अधिक पाया जाता है, जहां नमी की मात्रा अधिक हो या पाला अधिक पड़ता है। इस रोग से ग्रसित पौधे नर्सरी में पीले होकर मर जाते हैं।

पौध गलन से प्रभावित पपीते का पौधा

प्रबंधन

- नर्सरी डालने से पूर्व बीजों को सेरेसान 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर बोयें।
- जल निकास की उचित व्यवस्था करें।
- कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की मात्रा 2 ग्राम को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

विषाणु रोग

यह एक विषाणुजनित रोग है, जिसमें पौधों की पत्तियों पर पीले धब्बे बनते हैं तथा पत्तियां सिकुड़ जाती हैं। इससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है अर्थात पौधे बौने रह जाते हैं। फूल व फल गिरने लगते हैं। विषाणु रोग सफेद मक्खी द्वारा फैलता है।

प्रबंधन

- रोगग्रसित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- रोगार 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

आम की संकर किस्मों की लाभकारी बागवानी

संजय सिरोही*, करुणा दीक्षित* और सुरेश चंद राणा**

भात में वर्तमान में 2,312.30 हजार हैक्टर क्षेत्रफल में आम की बागवानी की जा रही है। देश के मुख्य आम उत्पादक राज्य, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, बिहार, गुजरात व तमिलनाडु हैं। उत्तर प्रदेश में इसका सर्वाधिक उत्पादन (23.86 प्रतिशत) होता है। आधुनिक तकनीकों व आम की नई संकर किस्मों का उपयोग कर, किसान अपने बागों से गुणवत्तायुक्त उत्पादन एवं अधिक मुनाफा लंबे समय तक ले सकते हैं।

भारत में आम की बागवानी का बड़ा महत्व है। आम के उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। इसकी बागवानी उष्ण एवं समशीतोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु में अच्छी प्रकार से की जाती है। 600 मीटर की ऊंचाई तक आम के बाग व्यावसायिक रूप से लगाए जा सकते हैं। इसके लिए 23.8^0 से 26.6^0 सेल्सियस तापमान उत्तम होता है।

आम की संकर किस्मों के पौधे शीघ्र फलन देना शुरू कर देते हैं और इनमें बढ़वार व फैलाव भी अपेक्षाकृत कम होता है। इस कारण इन्हें सघन बागवानी में भी लगाया जा सकता है। संकर किस्मों में नियमित फलन होती है, जबकि देश में उगाई जाने वाली परंपरागत आम की पुरानी किस्मों में एकांतर फलन होती है।

आम के फल पकने के बाद जल्दी ही खराब होने लगते हैं और बाजार में इसकी भरमार होने के कारण किसानों को कम दाम पर अपनी फसल बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है, जिससे उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है। आम की संकर प्रजातियों को राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय बाजार की मांग को ध्यान में रखकर विकसित किया गया है इसलिये संकर किस्मों के बाग लगाकर किसान अधिक उत्पादन व मुनाफा ले सकते हैं।

महत्वपूर्ण संकर किस्में

आम्रपाली

यह दशहरी और नीलम किस्मों के संकरण से बनी संकर प्रजाति है। आम्रपाली

आम्रपाली

*प्रो. एम.एस. स्वामीनाथन पुस्तकालय, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; **भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र करनाल-132001 (हरियाणा)

नियमित रूप से फलने वाली बौनी प्रजाति है। इस किस्म को सघन बागवानी के लिये अत्यंत उपयुक्त पाया गया है। इसके फल जुलाई के अंतिम सप्ताह में पकने लगते हैं। फल गूदेदार व रेशारहित होते हैं। आम्रपाली गृह वाटिका में लगाने के लिये भी उपयुक्त किस्म है। इसके पौधों को 2.5 × 2.5 मीटर की दूरी पर लगाकर एक हैक्टर क्षेत्रफल में 1600 पौधे उगाए जा सकते हैं।

मल्लिका

यह किस्म नीलम और दशहरी के किस्मों के संकरण से तैयार की गयी है।

मल्लिका

मल्लिका नियमित फल देने वाली मध्यम ओजस्वी प्रजाति है। इसके पौधों को 8 × 8 मीटर पर रोपण करके प्रति हैक्टर क्षेत्रफल में 156 वृक्ष लगाये जा सकते हैं। इसके फल बड़े आकार के अत्यधिक गूदायुक्त व स्वादिष्ट होते हैं। फल मध्य जुलाई में पकने शुरू होते हैं। यह किस्म दक्षिण भारत में अधिक प्रचलित है। विगत वर्षों में इसके फलों का निर्यात अमेरिका तथा खाड़ी देशों को किया गया है।

पूसा लालिमा

यह किस्म दशहरी व सेंसेशन किस्मों के संकरण से तैयार की गयी है। इसके वृक्ष मध्यम आकार के होते हैं और एक हैक्टर क्षेत्रफल में 278 पौधे लगाये जा सकते हैं। पूसा लालिमा नियमित फलन और शीघ्र पकने वाली प्रजाति है। इसके फल लाल रंग के व मध्यम आकार के बहुत ही आकर्षक होते हैं, जिनमें गूदा 70.1 प्रतिशत होता है। जून के पहले पखवाड़े में ये फल पकने प्रारंभ हो जाते हैं।

पूसा लालिमा

पूसा अरुणिमा

यह किस्म आम्रपाली व सेंसेशन किस्मों के संकरण से तैयार की गयी है। इसमें नियमित फलन होती है और वृक्ष मध्यम ओजस्वी होते हैं। पूसा अरुणिमा के पौधों को 6 × 6 मीटर दूरी पर लगाना चाहिए और एक हैक्टर क्षेत्रफल में 278 पौधे लगाये जा सकते हैं। इसके फल बड़े आकार (250 ग्राम) के लालिमा लिए अत्यन्त आकर्षक होते हैं। यह देर से पकने वाली प्रजाति है। इसके फल अगस्त के पहले सप्ताह में तैयार हो जाते हैं। फलों में मध्यम मिठास (19.5 प्रतिशत

कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) होती है। पकने के बाद फलों को सामान्य कमरे के तापमान पर 10-12 दिनों तक आसानी से रखा जा सकता है।

पूसा श्रेष्ठ

यह प्रत्येक वर्ष फलने वाली अत्यन्त आकर्षक किस्म है, जिसकी उत्पत्ति आम्रपाली व सेंसेशन किस्मों के संकरण से हुई है। इसके पौधे 6 × 6 मीटर की दूरी पर रोपण करके एक हैक्टर क्षेत्रफल में 278 वृक्ष लगाये जा सकते हैं। इसके फल आकर्षक, सुगंधित व लाल रंग लिए लंबाकार होते हैं, जिनमें 20.3 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ होता है। पूसा श्रेष्ठ के फल जुलाई के पहले सप्ताह में पकने आरंभ हो जाते हैं और पके फलों को 6-7 दिनों तक आसानी से रखा जा सकता है।

पूसा सूर्या

यह विदेशी किस्म 'एल्डन' का ही रूप है। इसमें नियमित फलन होता है और इसके वृक्ष मध्यम ओजस्वी होते हैं। इसके फल बड़े आकार के आकर्षक सुनहरे पीले रंग के होते हैं। एक हैक्टर क्षेत्रफल में इसके लगभग 278 वृक्ष लगाये जा सकते हैं। इसके फल मीठे (19.5 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) व मनमोहक सुगंध वाले होते हैं। फलों में 70 प्रतिशत गूदा होता है। फल जुलाई के मध्य से पकने शुरू हो जाते हैं। इस प्रकार की किस्मों की अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बहुत मांग है।

उपरोक्त सभी संकर किस्में भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में विकसित की गयी हैं। इनके अतिरिक्त देश के विभिन्न संस्थानों द्वारा भी आम की नवीन प्रजातियों का विकास किया गया है, जिनका विवरण निम्न है:

अर्का अरुणा

यह नियमित फल देने वाली बौनी किस्म है। इसको बैंगनपल्ली व अल्फांसो किस्मों के संकरण से तैयार किया गया है। अर्का अरुणा के फल मीठे (20 प्रतिशत

अर्का अनमोल

यह किस्म अल्फांसो व जनार्दन पसंद किस्मों के संकरण से तैयार की गई है। इसके फल सुनहरे पीले रंग के तथा लंबाकार होते हैं। अर्का अनमोल के फलों में मध्यम मिठास (19 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) होती है। इसके फल मध्यम आकार के (300-330 ग्राम) होते हैं। इसमें प्रतिवर्ष फलन होती है और यह प्रजाति सघन बागवानी के लिए उपयुक्त है।

पूसा पीताम्बर

यह नियमित फल देने वाली व सघन बागवानी के लिये उपयुक्त किस्म है। इसको आम्रपाली व लाल सुन्दरी किस्मों के संकरण से तैयार किया गया है। 6 × 6 मीटर की दूरी पर एक हैक्टर क्षेत्रफल में पूसा पीताम्बर के 278 वृक्ष लगाये जा सकते हैं। इसके फल मध्यम आकार के व पकने पर आकर्षक पीले रंग के हो जाते हैं। ये फल रसीले एवं मनमोहक सुगंध वाले होते हैं। इनमें 18.8 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ होता है। ऐसा देखा गया है कि इस प्रजाति में गुच्छा रोग कम लगता है।

कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) व लालिमा लिए होते हैं। फलों का गूदा पीले रंग का व रेशारहित होता है।

अर्का नीलकिरण

यह किस्म अल्फांसो व नीलम किस्मों के संकरण से विकसित की गई है। इसके फलों का गूदा गहरे पीले रंग का होता है। अर्का नीलकिरण के फल अंडाकार व 270-280 ग्राम वजन के होते हैं। पकने पर ये सुनहरे पीले रंग के हो जाते हैं।

अर्का पुनीत

यह किस्म अल्फांसो व बैंगनपल्ली किस्मों के संकरण से तैयार की गयी है। अर्का पुनीत नियमित फलन देने वाली प्रजाति है। इसके फल पकने पर पीले रंग के लालिमा लिए होते हैं। फल मीठे (21 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) व रेशारहित अंडाकार होते हैं।

ये सभी किस्में भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु द्वारा तैयार की गयी हैं।

अरुणिमा

यह आम्रपाली व वनराज किस्मों के संकरण से तैयार नियमित फलन देने वाली प्रजाति है। इसके फल मध्यम आकार (190-210 ग्राम) के तथा आकर्षक लाल रंग के होते हैं। फल मीठे (24.6 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) व गूदा नारंगी पीले रंग का होता है।

अंबिका

यह किस्म आम्रपाली व जनार्दन पसंद किस्मों के संकरण से विकसित की गई है। अंबिका नियमित फल देने वाली व देर से पकने वाली प्रजाति है। इसके फल लंबोत्तर अंडाकार व लगभग 300-350 ग्राम वजन के होते हैं। फल आकर्षक पीले रंग के एवं लालिमा लिए होते हैं। फलों में 21 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ पाया जाता है।

अरुणिमा और अंबिका किस्में भाकृअनुप -केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) द्वारा तैयार की गयी हैं।

सिन्धु

इस किस्म को रत्ना व अल्फांसो किस्मों के संकरण से तैयार किया गया है। यह नियमित फलन देने वाली प्रजाति है। सिन्धु के फलों में गुठली बहुत पतली व छोटी होती है। इसके फल आकर्षक, मध्यम आकार के व रेशारहित होते हैं।

रत्ना

इस किस्म को नीलम व अल्फांसो के संकरण से तैयार किया गया है। यह नियमित फलन देने वाली प्रजाति है। इसके फल आकर्षक, स्पंजी व रेशारहित होते हैं।

सिन्धु और रत्ना किस्में कोंकण कृषि विद्यापीठ, महाराष्ट्र द्वारा जारी की गयी हैं।

उपरोक्त आम की नवीन संकर किस्में नियमित फलन देने वाली तथा मध्यम सघन बागवानी के लिये उपयुक्त पाई गयी हैं। संकर आम के पौधे तीन वर्ष बाद फल देना शुरू कर देते हैं और तीसरे वर्ष में 5-6 फल मिल जाते हैं। इन प्रजातियों से 6-7 वर्ष बाद व्यावसायिक उत्पादन मिलना शुरू हो जाता है। दस वर्ष बाद 300 से 400 फल प्रतिवृक्ष मिलने शुरू हो जाते हैं।

आम के बाग लगाने के लिए किसान पौधे सरकारी संस्थान या सरकारी नर्सरी से ही लें। जलवायु तथा मृदा की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर उचित नवीन किस्मों की बागवानी से अधिक उत्पादन एवं मुनाफा लिया जा सकता है। ■

अर्का उदय

यह किस्म आम्रपाली एवं अर्का अनमोल किस्मों के संकरण से तैयार की गयी है। इसके पौधे मध्यम ओजस्वी और सघन बागवानी के लिए उपयुक्त होते हैं। अर्का उदय के फल अंडाकार (200-220 ग्राम), आकर्षक पीले रंग के होते हैं और जिनमें 70 प्रतिशत गूदा होता है। इसके फल मीठे (24-25 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) होते हैं और पके फलों को लगभग 10 दिनों तक रखा जा सकता है।

पूसा प्रतिभा

पूसा प्रतिभा

यह प्रत्येक वर्ष फल देने वाली किस्म है, जिसे आम्रपाली व संसेशन किस्मों के संकरण से तैयार किया गया है। पूसा प्रतिभा के वृक्ष मध्यम आकार के होते हैं और एक हैक्टर क्षेत्रफल में 278 पौधे लगाये जा सकते हैं। इसके फल जुलाई के पहले सप्ताह में पकने शुरू हो जाते हैं। इस प्रजाति के फलों की पीली सतह पर लाल रंग की आभा बहुत ही आकर्षक होती है। इसके फलों में अच्छी सुगंध व मध्यम मिठास (19.5 प्रतिशत कुल घुलनशील ठोस पदार्थ) होती है। फलों की निधानी आयु लगभग 6-7 दिनों की होती है। इस तरह की रंगीन छिलके वाली किस्मों की अंतर्राष्ट्रीय बाजार में बड़ी मांग है।

नवीन

बेल की उन्नत प्रजाति 'गोमा यशी'

ए.के. सिंह*, **संजय सिंह***, **आर.एस. सिंह*** और **पी.एल. सरोज***

बेल, भारत का अति प्राचीन एवं औषधीय गुणों से परिपूर्ण फल वृक्ष है। इसे वैदिक साहित्य में 'दिव्यवृक्ष' का नाम भी दिया गया। इसके पंचांग (जड़, छाल, पत्ते, शाख एवं फल) को औषधि के रूप में विभिन्न रोगों के उपचार के लिए बहुत उपयोगी पाया गया है। बेल के औषधीय गुणों का वर्णन यजुर्वेद, जैन साहित्य, उपवन विनोद, चरक संहिता, वृहत संहिता तथा अन्य आयुर्वेद साहित्य में विस्तृत रूप से मिलता है। इसके विशिष्ट गुणों जैसे कि विपरीत परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता, जननद्रव्यों में विविधता, प्रति इकाई उच्च उत्पादकता, विभिन्न प्रकार की भूमि एवं जलवायु में उगाने के लिए उपयुक्तता, कम देखभाल, पोषण तथा औषधीय गुण तरह-तरह के परिरक्षित पदार्थ बनाने के लिए उपयोगिता आदि का विशेष महत्व है। अधिक समय तक भंडारण क्षमता के कारण यह फल वृक्ष शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बारानी खेती के लिए लाभकारी पाया गया है।

बेल की विविध प्रजातियों जैसे कि एन.बी.-5, एन.बी.-7, एन.बी.-9, एन.बी.-16, एन.बी.-17, सी.आई.एस.एच.बी.-1, सी.आई.एस.एच.बी.-2, पंत शिवानी, पंत अपर्णा, पंत सुजाता और पंत उर्वशी का चयन पद्धति से विकास हुआ है। अपनी विशिष्टताओं के कारण 'गोमा यशी' बेल प्रजाति, देश के किसानों की पहली पसंद बन चुकी है। इसके पौधे कद में छोटे होने के कारण इनकी सघन बागवानी की संस्तुति की गई है। किसान भी बड़े पैमाने पर इसकी व्यावसायिक खेती करना प्रारंभ कर चुके हैं।

'गोमा यशी' के फल के गूदे का रंग आकर्षक तथा स्वाद मिठासयुक्त होता है। टी.एस.पी. 37-39^{0} ब्रिक्स है। इसमें बीज एवं रेशे की मात्रा बहुत कम तथा छिलका बहुत ही पतला होता है। पकने के बाद हाथ के हल्के दबाव से फल को तोड़ा जा सकता है। इसका गूदा पकने के बाद छिलके से अलग हो जाता है, जिसको आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में बारानी खेती से *'गोमा यशी'* के 10 वर्ष के पौधे से 75-95 कि.ग्रा. तक फल प्रतिवृक्ष प्राप्त होते हैं। इसमें गूदे की मात्रा 72-76 प्रतिशत होती है।

फल स्वादिष्ट एवं सुवासयुक्त होते हैं और इसके फल से कई प्रकार के मूल्यवर्धित उत्पाद तथा उच्च कोटि का शर्बत बनाया जा सकता है। इसके पके फलों के गूदे को चम्मच से भी खाया जा सकता है। यह प्रजाति बारानी क्षेत्रों में सघन बागवानी (5×5 मीटर) के लिए भी उपयुक्त पायी गई है। किसान इसकी सघन बागवानी कर अधिक आय प्राप्त कर रहे हैं। सघन बागवानी में एक हैक्टर क्षेत्रफल से 10 वर्ष के बगीचे से लगभग 2.5-4.0 लाख रुपये का लाभ कमाया जा सकता है। ऐसी लाभकारी विशिष्टताओं की वजह से 'गोमा यशी' प्रजाति के पौधों को देश के शुष्क एवं अर्ध शुष्क क्षेत्रों में लगाने के लिए दिन-प्रतिदिन मांग बढ़ती जा रही है।

बेल के महत्व को देखते हुए केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र में शोध का कार्य वर्ष 2003 से प्रारंभ किया गया, जो कि पश्चिम भारत में बेल पर परीक्षण करने वाला एक मात्र केन्द्र है। सर्वप्रथम देश के विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों तथा भाकृअनुप के संस्थानों द्वारा विकसित की गई प्रजातियों का इस केन्द्र पर मूल्यांकन किया गया। इसके साथ ही साथ देश के विभिन्न राज्यों से आशाजनक जननद्रव्यों का संग्रहण किया गया। कुल 196 जननद्रव्यों का इस केन्द्र के प्रक्षेत्र में संग्रहण और मूल्यांकन किया जा रहा है। इस केन्द्र पर *'गोमा यशी'* प्रजाति का विकास किया गया जिसको भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा वर्ष 2010 में जारी किया गया।

'गोमा यशी' प्रजाति के विशिष्ट गुणों, उत्पादकता तथा गुणवत्ता की वजह से यह किस्म देश के किसानों की पहली पसंद बन चुकी है। अभी तक यह प्रजाति देश के विभिन्न राज्यों में लगभग 450 हैक्टर क्षेत्रफल में लगाई जा चुकी है। सीमांत किसान 5-20 पौधे अपने

गोमा यशी का पौधा

*केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र (भाकृअनुप-केशुबासं) वेजलपुर, पंचमहल (गोधरा), गुजरात

विपणन के लिए फलों की पैकिंग

प्रक्षेत्र पर तथा विकासशील किसान 100-500 पौधे अपने प्रक्षेत्र पर लगा रहे हैं। यह प्रजाति राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक इत्यादि प्रदेशों में किसानों के प्रक्षेत्र पर पहुंच चुकी है। पश्चिम भारत में 2009 से पहले किसान बेल के व्यावसायिक बगीचे नहीं लगा रहे थे। अब किसान 'गोमा यशी' की उत्पादकता तथा गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए अपने प्रक्षेत्र पर इसकी व्यावसायिक बागवानी करना प्रारंभ कर रहे हैं।

किसानों के अनुभव

श्री रमणलाल पुराणी गायत्री परिवार ने बेल शर्बत का व्यवसाय वर्ष 2018 में गोधरा में प्रारंभ किया। उनको केन्द्र पर आने का निमंत्रण दिया गया। उन्होंने गुजरात में पहली बार बेल शर्बत बनाना शुरू किया, जिसकी वजह से पंचमहल जिले में इसका प्रचार-प्रसार हुआ। उनको गर्मी में बेल शर्बत से प्रत्येक वर्ष 25-30 हजार रुपये शुद्ध आय प्राप्त हो रही है।

अर्द्धशुष्क क्षेत्र में 'गोमा यशी' की सघन बागवानी

आज वे दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बन गए हैं। इसी वर्ष भुज से एक किसान *श्री गोविंदभाई* ने 500 कि.ग्रा. फल इस केन्द्र से ले जाकर स्क्वैश बनाकर 25 हजार रुपये का लाभ प्राप्त किया है। राजस्थान में पर्क फूड की हंसा जैन ने इस केन्द्र का दौरा कर प्रशिक्षण लेकर बेल स्क्वैश, कैंडी इत्यादि से लगभग 50 हजार से एक लाख रुपये का लाभ प्राप्त किया है।

दभोड़ा ग्राम गांधीनगर के किसान रणछोड़भाई पटेल ने भी इस केन्द्र से 'गोमा यशी' के 70 कलमी पौधे वर्ष 2012 में अपने फार्म पर लगाये थे। आज वे 30-35 हजार शुद्ध आय प्राप्त कर रहे हैं। गुजरात में किसानों को बेल वृक्ष की जानकारी नहीं थी। केन्द्र द्वारा अथक प्रयासों से किसानों के बीच इस फल वृक्ष की जानकारी बढ़ी है और लोगों ने अब इसे उपयोग में लेना प्रारंभ कर दिया है। इस प्रजाति के कलमी पौधों की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यह पौधा कद में छोटा होता है, जिसको 5 × 5 मीटर की दूरी पर लगाने की संस्तुति केन्द्र द्वारा दी जा चुकी है। इसकी बागवानी से किसानों को दोगुना लाभ प्राप्त हो रहा है। ■

'गोमा यशी' की विशेषताएं

इसका वृक्ष कद में बौना, फल का वजन (1.4 कि.ग्रा.), पतला छिलका (1.5 सें.मी.) रेशा (2.4 प्रतिशत), छिलके का वजन (160 ग्राम), गूदे की मात्रा (72-76 प्रतिशत) टी.एस.एस. गूदा (38^0 ब्रिक्स), टी.एस.एस.म्यूसिलेज (43^0 ब्रिक्स), अम्लता (0.29 प्रतिशत) विटामिन सी (22 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा) एव फल तथा गूदे का रंग आकर्षक होता है। इसके साथ-साथ पौधों का आच्छादन घना तथा शुष्क क्षेत्रों में कांटे नहीं पाये जाते हैं। इस प्रजाति की सघन बागवानी (5 × 5 मीटर) में 400 पौधे एक हैक्टर क्षेत्रफल में लगाये जा सकते हैं। इसकी सघन बागवानी से विपरीत परिस्थिति में भी आय दोगुनी से तिगुनी की जा सकती है।

'गोमा यशी' के विविध रूप

बेल की इसी उपयोगिता एवं विपरीत परिस्थिति में सहनशीलता को ध्यान में रखकर केन्द्रीय बागवानी परीक्षण केन्द्र, वेजलपुर द्वारा पिछले 17 वर्षों से पूरे भारत में बेल के विविध जननद्रव्यों (196) का संग्रहण एवं उनका मूल्यांकन करके चयन पद्धति से नई प्रजाति 'गोमा यशी' का विकास वर्ष 2010 में किया गया है। मूल्यांकन के दौरान यह पाया गया कि शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों के लिए यह किस्म अपेक्षाकृत बौनी होती है। इसकी टहनियों पर सूखे क्षेत्रों में कांटे नहीं पाये जाते हैं। फल का औसतन वजन पारिवारिक जरूरतों के अनुरूप लगभग 1.41 कि.ग्रा. है। फलों का रंग पीला, आकार गोल एवं आकर्षक होता है।

'गोमा यशी' बेल का उपयोग

पौधों का कद छोटा तथा फलों का आकार और वजन औसतन अनुकूल होने के कारण इसको आसानी से तोड़ा जा सकता है। फल का छिलका पतला, कम बीज एवं रेशा होने के कारण इसको चम्मच से भी खाया जा सकता है। 'गोमा यशी' के कच्चे फलों से मुरब्बा एवं कैंडी बनाई जा सकती है। इसके पके फलों के गूदे से पल्प, स्क्वैश, टॉफी, जैम, पाउडर, आइसक्रीम आदि बनाकर इसका उपयोग किया जा सकता है। 'गोमा यशी' के फल को फलाहार के तौर पर भी लिया जा सकता है। कच्चे फल को भूनकर खाने से भूख संबंधी समस्या एवं अन्य पेट के विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है। इसके पके फलों के गूदे को सुखाकर पाउडर के रूप में प्रतिदिन दूध के साथ लेने से तथा नियमित इसके गूदा या इसका शर्बत बनाकर सेवन करने से पेट के विकारों से छुटकारा पाया जा सकता है। इसके गूदे से उच्च कोटि का शर्बत बनाया जा सकता है।

कीवी उद्यान स्थापना के प्रारंभ में टी बार ट्रेल्स के कारण अधिक लागत आती है। हिमाचल प्रदेश के उद्यान विभाग द्वारा प्रति हैक्टर लाभ लागत का आंकलन किया गया है। कीवी उत्पादन से लगभग प्रति हैक्टर 10 लाख रुपये की सालाना आय है, जो कि अन्य फलोत्पादन की अपेक्षा सर्वाधिक है। कीवी उत्पादन की नई तकनीकी व क्लस्टर अप्रोच से क्षेत्र के लोगों की आजीविका को बढ़ाने की दिशा में प्रयास किये जा रहे हैं।

कीवी फल

विद्याराम सागर*, राम रोशन शर्मा* और **जितेन्द्र कुमार***

कीवी फल अपने आप में एक विशेष श्रेणी का फल है। इस फल का उत्पत्ति स्थल चीन है, जबकि इसको व्यावसायिक कृषि के रूप में न्यूजीलैंड द्वारा विकसित किया गया। विश्व के संपूर्ण कीवी उत्पादन का 70 प्रतिशत अकेले न्यूजीलैंड में किया जाता है। न्यूजीलैंड के अतिरिक्त दूसरे देशों में इसका उत्पादन 1960 के आसपास शुरू हो गया था।

आज अमेरिका, इटली, चीन, जापान, फ्रांस, जर्मनी तथा ऑस्ट्रेलिया में कीवी का भारी मात्रा में उत्पादन होता है। इसका वैज्ञानिक नाम-एक्टीनीडिया डेलीसिओसा है। यह देखने में हल्के भूरे रंग का, रेशेयुक्त छिलके वाला फल है, जो चीकू फल की तरह दिखता है। इसके अंदर का हिस्सा हरे रंग का होता है, जिसमें छोटे-छोटे कोमल गहरे बीज पाये जाते हैं।

भारत में भी कीवी का उत्पादन हिमाचल प्रदेश के 128 हैक्टर क्षेत्रफल में और अन्य प्रदेशों जैसे-अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड, मणिपुर, जम्मू-कश्मीर तथा उत्तराखंड आदि में वर्तमान समय में किया जा रहा है।

उपस्थित पोषक तत्वों की मात्रा, फलों की रचना, उसकी प्रजाति, वातावरण तथा परिपक्वता की अवधि पर निर्भर करती है। कीवी में विभिन्न पोषक तत्व पाये जाते हैं।

कीवी की विशेषताएं

कीवी की बेल तीन वर्ष बाद फल देना शुरू कर देती है तथा 30-40 वर्ष तक उत्पादन देती है। एक पौधा औसतन 50-90 कि.ग्रा. प्रतिवर्ष फल देता है। अधिकांश फल जैसे-सेब, नाशपाती, अखरोट आदि में प्रतिवर्ष फल नहीं आता है। कीवी की बेल प्रतिवर्ष फल देती है तथा फूल मई के प्रथम सप्ताह में खिलते हैं, जो कि परागण के लिए उपयुक्त समय है। इसमें कम कैलोरी व फाइबर होता है। यह जंगली जानवरों से सुरक्षित रहता है। कीवी फल हल्के भूरे रेशों द्वारा ढके रहते हैं, जिसके कारण पक्षियों व बंदरों से भी हानि का खतरा नहीं है। पहाड़ों में बंदरों के कारण अन्य फलदार पौधों की सुरक्षा करना मुश्किल होता है। इसके अलावा इसमें किसी रोग का प्रकोप नहीं रहता है व खास कीटनाशक की जरूरत नहीं होती है। इसलिए इसे व्यावसायिक व इकोफ्रेंडली फल माना जाता है। कीवी फल कमरे के तापमान में एक माह तक रखा जा सकता है तथा कोल्ड स्टोरेज में 4-6 माह तक रखा जा सकता है।

बागेश्वर जिले में कीवी फलोत्पादन का परिदृश्य

परियोजना क्षेत्रों के अंतर्गत बागेश्वर (कपकोट) कीवी का फलोत्पादन पूर्व से ही किया जाता रहा है। क्षेत्र समुद्र तल से 1500-2200 मीटर ऊंचाई एवं औसत वर्षा 1500-200 मि.मी. तक है, जो कि कीवी के लिए आवश्यक मापदंडों के अनुकूल है। इनमें कपकोट क्षेत्र के शामा, लीती, नौकुड़ी व बड़ीपन्याली आदि क्षेत्रों में 2009 से कृषकों द्वारा कीवी का उत्पादन किया जा रहा है।

कीवी फलोत्पादन के क्षेत्र विस्तार की योजना

वर्ष 2016-17 में ग्राम्या-2 परियोजना द्वारा शामा क्षेत्र में पौधों का वितरण किया गया है। कृषकों के पूर्व में अनुभवों व फलोत्पादन की रुचि में वृद्धि को देखते हुए ग्राम्य परियोजना द्वारा कृषकों को कीवी क्षेत्र के विस्तार करने

कीवी का बढ़ता व्यावसायिक उत्पादन

*उप परियोजना निदेशक, उत्तराखंड विकेन्द्रीकृत जलागम विकास परियोजना-फेज-II, बागेश्वर प्रभाग (उत्तराखंड)

व बंजर भूमि का सुधार कर कीवी फलोत्पादन के लिए प्रेरित किया गया। कृषकों को वर्ष 2009 से वर्ष 2018 तक उद्यान विभाग द्वारा कुल 1773 पौधे व ग्राम्या-2 परियोजना द्वारा वर्ष 2016 से वर्ष 2018 तक कुल 1450 पौधे वितरित किए गए हैं। कीवी उत्पादन बागेश्वर जिले में कपकोट क्षेत्र के 10 किसानों द्वारा लगभग 573 पौधों से लिया जा रहा है।

श्री भवान सिंह कोरंगा, जो इस क्षेत्र के प्रगतिशील कृषक हैं, द्वारा वर्ष में लगभग 40 क्विंटल कीवी का उत्पादन किया जाता है। कृषकों को फलोत्पादन तकनीकियों व अधिक उत्पादन के लिए समय-समय पर उद्यान विभाग, कृषि विज्ञान केंद्रों से प्रशिक्षण दिया गया। बागेश्वर (कपकोट) क्षेत्रों में कीवी उत्पादन को बढ़ाने के लिए क्षेत्र के 20 इच्छुक किसानों को डा. वाई.एस. परमार विश्वविद्यालय, सोलन में 3 दिवसीय प्रशिक्षण/अध्ययन भ्रमण और हिमाचल के स्थानीय कृषकों के साथ क्षेत्र भ्रमण करवाया गया। इसमें कृषकों को कीवी उत्पादन के लिए पौध तैयार करना, रोपण के लिए गड्ढे तैयार करना, खाद-उर्वरकों की मात्रा, कटाई-छंटाई व अन्य तकनीकों पर जानकारियां दी गयी। कृषकों को मिली तकनीकी जानकारी के बाद उत्पादकों के अनुसार कीवी की उत्पादकता व गुणवत्ता में वृद्धि हो रही है। हिमाचल प्रदेश के सोलन से ग्राम्य प्रभाग, बागेश्वर द्वारा 1400 कीवी के पौधों की खरीद कर 4 हैक्टर क्षेत्रफल में ग्राम्य परियोजना के योगदान व तकनीकी सहयोग से रोपण कार्य कर लिया गया है। इसमें मुख्य रूप से एलीसन व हैवार्ड प्रजातियों के पौधे हैं। इन पौधों को ग्राम पंचायत लीती व शामा के इच्छुक कृषकों द्वारा लगाया गया है। परियोजना पूर्ण होने तक लगभग 30 हैक्टर क्षेत्र में कीवी फलोत्पादन की विस्तारीकरण की योजना उद्यान विभाग के साथ मिलकर बनाये जाने का लक्ष्य है।

कीवी की बागवानी से मुनाफा ही मुनाफा

विटामिन 'सी' का उत्तम स्रोत है कीवी

नई पौध तैयार करना

प्रगतिशील काश्तकारों में शामिल श्री हरीश कोरंगा व श्री भवान सिंह कोरंगा जी द्वारा प्रशिक्षण के बाद स्थानीय स्तर पर ही कीवी की नई पौध तैयार की जा रही है। इसके लिए उन्हें परियोजना से पॉलीटनल, ग्रीन नेट उपलब्ध कराये गये हैं। इसमें उनके द्वारा कीवी की कलम के माध्यम से नई पौध नर्सरी में तैयार की जा रही है, जिसमें प्रत्येक बार नये पौध मंगाने की आवश्यकता नहीं पड़ रही है व समय के साथ-साथ ही धन की भी बचत हो रही है।

परियोजना द्वारा कीवी उत्पादकों को हैलनेट वितरण

उच्च हिमालयी क्षेत्र होने के कारण यहां समय-समय पर बारिश होती रहती है, जिसके साथ ओले भी गिरते हैं और फल खराब होने का खतरा बना रहता है। इससे फल की अच्छी कीमत मिलना मुश्किल होता है। इस सबसे बचने के लिये ग्राम्या द्वारा कीवी उत्पादकों को एन.टी. हैलनेट दिये गये, जिससे फलों को ओले से होने वाले नुकसान से बचाया जा रहा है।

विपणन रणनीति

कीवी विपणन की योजना को सफल बनाने व उच्च बाजार व्यवस्था के लिए कीवी उत्पादक समूहों को कृषक संघ से जोड़ा जा रहा है। इस वर्ष कीवी का उत्पादन लगभग 50 क्विंटल है, जो 2022 तक बढ़कर 150 क्विंटल तक हो जायेगा, जिसे कृषक समूहों द्वारा एकत्र कर कृषक संघ के माध्यम से उत्पाद को अलग-अलग श्रेणी कर स्थानीय काश्तकारों द्वारा निर्मित रिंगाल की टोकरी में पैकिंग कर मूल्यवर्द्धन किया जायेगा तथा लोवर ग्रेडिंग से जैम, जैली, स्क्वैश को प्रदेश व देश की राजधानी, राज्य की उच्च स्तरीय मण्डियों, आउटलेट व माल इत्यादि में विक्रय किया जायेगा। इसके लिए किसानों व कृषक संघ के लोगों को परियोजना के माध्यम से प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अक्टूबर 2019 को तीन दिवसीय कीवी प्रसंस्करण, अध्ययन भ्रमण व प्रशिक्षण का आयोजन डा. वाई.एस. परमार, विश्वविद्यालय, सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा भी दिया गया।

पोषक तत्वों से भरपूर कीवी फल

साभार: **कीवी रिपोर्ट/ग्राम्या-2, बागेश्वर**

रबी प्याज की उन्नत खेती

राजेन्द्र सिंह यशोना* और **राधेश्याम शर्मा****

रबी ऋतु में उगाई जाने वाली सब्जी की फसलों में प्याज एक महत्वपूर्ण फसल का स्थान ले चुकी है। हमारे देश के कई क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर यह उगाई जाती है एवं विश्व स्तर पर उत्पादन में दूसरा स्थान प्राप्त कर अन्य देशों में भारी मात्रा में निर्यात की जाने वाली फसल के रूप में जानी जाती है। प्याज का उपयोग सलाद के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की सब्जियों, मसाले एवं व्यंजन बनाने में किया जाता है। प्याज के औषधीय गुण के कारण इसका उपयोग दवाई बनाने के लिए भी किया जाता है। प्रसंस्करित उत्पादों के लिए इसके छल्ले, चूर्ण, तेल, शुष्क छिलके इत्यादि के रूप में इसे उपयोग किया जाता है। निरंतर घरेलू उपयोग एवं निर्यात की मांग के कारण व्यावसायिक फसल के रूप में किसानों के बीच इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में अधिकांश कृषक सीमांत जोत वाले हैं। अर्धशुष्क जलवायु के साथ मध्यम काली मृदा और सिंचाई का पानी रबी मौसम की खेती करने के लिए कुछ क्षेत्रों को छोड़कर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। रबी में प्याज की फसल सोयाबीन की कटाई के बाद ली जाती है। सोयाबीन मृदा से सल्फर की अधिक मात्रा का दोहन करती है, जिसका विपरीत प्रभाव प्याज के उत्पादन पर पड़ता है। प्याज में सल्फर की वजह से गुणवत्तायुक्त कंद का उत्पादन व भंडारण क्षमता बढ़ जाती है। कुछ क्षेत्रों में किसानों को प्याज की नई व अच्छी प्रजातियों और तकनीकी जानकारी न होने की वजह से वे गुणवत्तायुक्त उत्पादन नहीं ले पाते हैं। अब खेती की नई जानकारी एवं तकनीक का उपयोग कर प्याज का अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है।

*यशोना कृषि सेवा केन्द्र, प्रगति नगर, सोनकच्छ, देवास-455118 (मध्य प्रदेश); **कृषि इंटर विद्यालय, आगेरा, सोनकच्छ, देवास-455118 (मध्य प्रदेश)

खेत की तैयारी

प्याज उत्पादन के लिए बलुई दोमट मृदा उपयुक्त होती है, लेकिन प्याज की फसल की सभी प्रकार की मृदा में बुआई कर सकते हैं। मृदा का पी-एच मान 6.5-7.5 के बीच एवं मध्यम कार्बनिक पदार्थ सहित नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। भूमि को सुविधानुसार 2-3 बार हल द्वारा भुरभुरा एवं समतल कर लें तथा 1.5-2.0 मीटर चौड़ाई एवं आवश्यकता अनुसार लम्बाई में मेड़ वाली या ऊंची उठी छोटी-छोटी क्यारियां तैयार करते हैं। मेड़ वाली क्यारियों की अपेक्षा ऊंची उठी क्यारियों में कंद का आकार व गुणवत्ता अच्छी होने के कारण प्याज उत्पादन अच्छा होता है।

प्याज की पौध एवं रोपाई

रबी की फसल के लिए बीज की बुआई फफूंदनाशक दवा से उपचारित कर मानसून समाप्ति के बाद अक्टूबर अंत तक करके 45-60 दिनों की पौध का रोपण नवंबर-दिसंबर में करते हैं। छिड़काव विधि में 8-10 कि.ग्रा. बीज की पौध एक हैक्टर खेत के लिए पर्याप्त होती है। बीज बुआई के 15-20 दिनों पहले खेत की सिंचाई करके काली पॉलीथीन बिछा देने से हानिकारक कीट, जीवाणु एवं खरपतवार के बीज सौरीकरण क्रिया से नष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात खेत की जुताई 5-7 सें.मी. गहराई

नर्सरी में तैयार प्याज की पौध

प्याज की किस्में

बागवानी अनुसंधान संस्थानों, राष्ट्रीय बीज निगम एवं कृषि विश्वविद्यालों द्वारा विकसित की गई प्याज की उन्नत प्रजाति का उपयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। यह किसान के लिए आर्थिक रूप से लाभकारी है। अधिक उत्पादन देने वाली प्याज की प्रजातियां

जैसे-पूसा रत्नार, पूसा माधवी, एग्रीफाउंड डार्क रेड, लाइन-883, भीमा डार्क रेड, भीमा किरण, भीमा शक्ति, भीमा श्वेता, भीमा रेड, भीमा राज, फुले स्वर्णा, फुले सामर्थ्य, अर्का कल्याण, एन-53 इत्यादि को अपने प्रक्षेत्र पर लगाकर अच्छा उत्पादन ले सकते हैं।

प्याज पौध की रोपाई

तक करें। इससे अधिक गहरी जुताई करने से पौध की जड़ें अधिक गहरी चली जाती हैं और निकालते समय प्याज की पौध जड़ के पास से अधिक टूटती हैं। बीज की बुआई गहरी नाली बनाकर 15-20 सें.मी. ऊंची उठी हुई क्यारियों में करें। बुआई के बाद बीज को हल्का मिला दें या बारीक मिट्टी या गोबर की खाद या कम्पोस्ट से ढककर फव्वारे से सिंचाई करें। रबी प्याज की पौध की रोपाई अधिकतर मेड़ बनाकर समतल क्यारियों में की जाती है, लेकिन नाली बनाकर ऊंची उठी क्यारियों में करने से इसका अधिक उत्पादन मिलता है। प्याज रोपाई के लिए सामान्यत: पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सें.मी. रखी जाती है।

सिंचाई एवं खरपतवार प्रबंधन

प्याज की जड़ उथली एवं सूक्ष्म होने से अधिकतम 15 सें.मी. तक सीमित होती है। रबी प्याज में एक सिंचाई रोपाई के तुरंत बाद और 5-6 सिंचाइयां 15-20 दिनों के अंतराल पर कंद बनने तक आवश्यक होती

खुदाई हेतु तैयार प्याज के कंद

रबी प्याज उत्पादन की तकनीकी

तापमान, मृदा व ढलान, रोपण का समय, बीज की गुणवत्ता इत्यादि कारकों का प्रभाव प्याज की पैदावार एवं गुणवत्ता पर अधिक पड़ता है। इन पौधों की सर्वोत्तम वृद्धि व बढ़वार के लिए वातावरण का तापमान 25 डिग्री सेल्सियस कम एवं इससे अधिक तापमान कंद बनकर बड़े आकार लेते समय उपयुक्त होता है। वानस्पतिक वृद्धि के समय उच्च तापमान एवं वर्षा के कारण अधिक आर्द्रता होने से बैंगनी धब्बा एवं झुलसा रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। कंद के विकास के समय अधिक दिनों तक तापमान गिरावट होने से फूल के डंठल निकलने लगते हैं। अचानक तापमान बढ़ने से गांठें पूरी तरह विकसित हुए बिना परिपक्व हो जाती हैं। इसलिए रबी मौसम में प्याज की रोपाई मध्य दिसंबर से जनवरी प्रथम सप्ताह तक कर देने से प्याज की अच्छी बढ़वार व उत्पादन के लिए जनवरी से मार्च तक का वातावरण उपयुक्त होता है।

हैं। सूक्ष्म टपक सिंचाई इसमें सतह सिंचाई की अपेक्षा अधिक लाभदायक पायी गयी है। इससे उत्पादन और गुणवत्ता के साथ ही पानी की बचत होती है। प्याज में खरपतवार जैसे-मोथा, दूब, बथुआ, दूधी, चौलाई इत्यादि खेत में उगते हैं। खरपतवारनाशी का उपयोग ऑक्सीफ्लोरोफेन का 10-15 मि.ली. या क्यूजालोफॉल इथाइल 25 मि.ली. प्रति 15 लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवार को नियंत्रित किया जा सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

फसल बढ़वार एवं उत्पादन के लिए 20-25 टन/हैक्टर गोबर की खाद या 3 टन वर्मीकम्पोस्ट क्यारियों में तैयार करने के पूर्व समान रूप से खेत में मिलाएं। प्याज की फसल को 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश तथा 30 कि.ग्रा. सल्फर देने की सिफारिश की जाती है। फॉस्फोरस, पोटाश और सल्फर की पूरी एवं नाइट्रोजन की 20 कि.ग्रा. मात्रा को पौध रोपाई के साथ और शेष बची नाइट्रोजन को तीन समान भागों में विभाजित करके पौध रोपण के 30, 45 और 60 दिनों के बाद खड़ी फसल में एक समान छिड़क देते हैं। यदि फसल ऐसी मिट्टी में लगाई गई हो, जिसमें नाइट्रोजन व अन्य पोषक तत्वों की हानि जल अंत:स्राव के कारण अधिक होती है, तो ऐसी स्थिति में पौध रोपण के 15, 30 और 45 दिनों के बाद जल घुलनशील उर्वरक एनपीके (19:19:19) को 150-200 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर जल) और एनपीके (13:0:46) को भी 150-200 ग्राम प्रति पम्प 60, 75 और 90 दिनों के बाद एवं जल घुलनशील पोटेशियम सल्फेट (0:0:50:17.5) का 45, 60 और 75 दिनों के बाद पर्णीय

बैंगनी धब्बा रोग से ग्रसित पौधा

डंठल या पत्तियां हटाने हेतु तैयार प्याज

छिड़काव करने से उपज में बढ़ोतरी के साथ लम्बी अवधि के भंडारण के लिए गुणवत्तायुक्त कंद की प्राप्ति होती है।

कंद खुदाई एवं भंडारण

रबी प्याज के कंदों की खुदाई मार्च मध्य तक पत्तियों का रंग पीला होने पर करते हैं। जब कंद मिट्टी की ऊपरी सतह पर निकलने लगते हैं, तो कंद का ऊपरी या पत्तियों के नीचे का डंठल हाथ से दबाने पर मुलायम होता है या ऊपरी हिस्सा पत्तियों सहित गिरने लगता है। कंदों की खुदाई कर इन्हीं की पत्तियों से इस प्रकार ढककर रखते हैं कि कंद पर सूर्य का प्रकाश न पड़े। ऐसा करने से कंद का रंग, भंडारण क्षमता एवं बाजार मूल्य बढ़ जाता है। कंद की पत्तियों के 20-30 दिनों में सूख जाने के पश्चात कंद से डंठल को हटाना चाहिए। वैज्ञानिक तरीके से कंद भंडारण 0-3 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 90 प्रतिशत आर्द्रता पर करते हैं। किसान स्वयं सुविधानुसार हवादार शुष्क स्थान पर मोटे तार की जाली में प्याज कंद का भंडारण 6-8 माह के लिए आसानी से कर सकते हैं। तार की जाली की संरचना इस प्रकार तैयार करें कि जिसे ईंट या लकड़ी के चौकोर टुकड़ों पर रखा जा सके। इससे प्याज के कंदों के चारों तरफ से हवा का आवागमन हो सकता है। प्रायोगिक रूप से यह देखा गया कि एक समान आकार के कंद में हवा का आवागमन अधिक होने से ग्रेडिंग किए कंद में सड़न-गलन की समस्या भंडारण में 90 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

पैदावार

सामान्यत: प्याज की उपज 200-300 क्विंटल/हैक्टर तक प्राप्त हो जाती है, लेकिन उपज प्रजातियों पर निर्भर करती है, जैसे आकार में चपटे कंद की उपज अधिक एवं नारियल के समान कंद की कम उपज, किंतु भंडारण क्षमता अधिक होती है।

रोग एवं कीट सुरक्षा

बैंगनी धब्बा रोग *ऑल्टरनेरिया पोरी* फफूंद से होता है। इस रोग में प्याज की पत्तियों पर सफेद भूरे मध्य में बैंगनी रंग के धब्बे बनते हैं। इसकी रोकथाम के लिए इप्रोडियोन 30 ग्राम/पम्प या हैक्साकोनाजोल 15 ग्राम/पम्प घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

स्टेमफिलियम झुलसा फफूंद रोग है, इससे पत्तियों में सफेद और हल्के भूरे रंग के बाद काले या भूरे धब्बे हो जाते हैं। नियंत्रण के लिए क्लोरोथेलोनिल का 30 ग्राम/पम्प या मैन्कोजेब 35 ग्राम/पम्प 15 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

आर्द्रगलन *फ्यूजेरियम ऑक्सीपोरम* नामक फफूंद से नर्सरी पौध का प्रमुख रोग है। पौधे भूमि की सतह के पास से सड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए थायरम 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज या नर्सरी पौध की जड़ों में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 30 ग्राम/पम्प छिड़काव करें।

थ्रिप्स कीट आकार में बहुत छोटे पीले से ब्राउन रंग के होते हैं। ये नई पत्तियों का रस चूसते हैं। इनकी रोकथाम के लिए एसीफेट 30 ग्राम/पम्प या प्रोफेनोफॉस 15 ग्राम/पम्प घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

चने की कटुआ इल्ली पौध रोपण के बाद भूमि की सतह से पौध को काट कर जड़ भाग को खाती है। इसके नियंत्रण के लिए कार्बोरिल डस्ट 30 ग्राम/पम्प या जड़ क्षेत्र में फोरेट का छिड़काव करें।

शीत ऋतु में बागों के कार्यकलाप

राम रोशन शर्मा*, **हरे कृष्णा****, **स्वाति शर्मा***** और **विजय राकेश रेड्डी******

शरद ऋतु के आरंभ के साथ ही उद्यान में किए जाने वाले कृषि कार्यों का महत्व विशेष रूप से बढ़ जाता है। इस अवधि के दौरान जहां अमरूद, नीबूवर्गीय फल और बेर के पके फलों को बाजार भेजने की व्यवस्था करनी होती है, वहीं बागों में खाद का प्रयोग भी करना होता है। नवंबर-दिसंबर की द्विमाही में छोटे पौधों को पाले से बचाने की भी विशेष व्यवस्था करनी होती है। पाले की समस्या शीतोष्ण फलों की अपेक्षा उष्ण और उपोष्ण कटिबंधीय फलों विशेषकर केला, पपीता, लीची, आम इत्यादि में ज्यादा प्रबल होती है। पौधों को छप्पर लगाकर, धुआं देकर या सिंचाई करके पाले से बचाएं। इस द्विमाही में बागों में किए जाने वाले अन्य प्रमुख कृषि कार्यों के संबंध में अधिक जानकारी इस लेख में दी जा रही है।

अमरूद

नवंबर में अमरूद के बागों में निराई-गुड़ाई और सिंचाई की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके साथ ही इस द्विमाही में गोबर की अच्छी तरह से सड़ी-गली खाद को रासायनिक उर्वरकों जैसे-सिंगल सुपर फॉस्फेट (एसएसपी) और म्यूरेट ऑफ पोटाश (एमओपी) के साथ दिया जाना चाहिए। यूरिया की आधी मात्रा भी नवंबर में देनी चाहिए, जबकि शेष आधी मात्रा जुलाई में देनी चाहिए। छह वर्ष के पौधे को, सामान्यत: 60 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. यूरिया, 2.5 कि.ग्रा. एसएसपी और आधा कि.ग्रा. एमओपी दिया जा सकता है। 75 ग्राम नाइट्रोजन, 65 ग्राम फॉस्फोरस, 50 ग्राम पोटेशियम प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष की दर से भी दिया जा सकता है। यह भी ध्यान देना आवश्यक है कि उर्वरकों की खुराक केवल मृदा परीक्षण के आधार पर ही हो। अमरूद की पोषी जड़ 25 सें.मी. गहराई तक मिट्टी की सतह में पाई जाती हैं। उर्वरकों के बेहतर उपयोग के लिए उन्हें पेड़ के तने से 1 मीटर की दूरी पर 25 सें.मी. गहराई में दिया जाना चाहिए।

विक्रय के लिए तैयार अमरूद

नवंबर-दिसंबर में वृक्षों तथा छोटे पौधों को पाले से बचाने की व्यवस्था करनी चाहिए। छाल खाने वाले कीटों की रोकथाम के लिए डाइक्लोरोवॉस एक मि.ली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छेदों में भरकर चिकनी मिट्टी से लेप कर दें। तैयार पके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। स्टूलिंग विधि से पौधे तैयार करने के लिए 2-3 वर्ष के पौधों को जमीन से 4-5 इंच की ऊंचाई पर काट दें, जिससे उनमें अगली तिमाही में फुटाव आयेगा।

पपीता

पिछले माह लगाए गए पौधों की सिंचाई करनी चाहिए। उद्यान की सफाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। नवंबर

*खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; **एवं***भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी-221005 (उत्तर प्रदेश); ****भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु-560 089 (कर्नाटक)

पपीते में ड्रिप सिंचाई

के पहले और तीसरे सप्ताह में हल्की सिंचाई करने के पश्चात उद्यान में निराई-गुड़ाई करें। दिसंबर में फॉस्फोरस तथा पोटाशयुक्त उर्वरक को मृदा में भलीभांति मिलाएं तथा गोबर की अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद का प्रयोग करें। पौधों को पाले से बचाने के लिए उद्यान में धुआं करें एवं पौधों को पुआल या पॉलीथीन से ढकने की व्यवस्था करें।

आम

नवंबर-दिसंबर में आम के बाग में सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। भूमि की आवश्यक निराई-गुड़ाई के पश्चात हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। वृक्षों को पाले से बचाने के लिए धुआं और हल्की सिंचाई करें। नर्सरी में पौधों को पाले से बचाने के लिए उन्हें छप्पर से ढक देना चाहिए। नए बाग के छोटे पौधों को पुआल से ढक दें, परंतु उन्हें पूर्व दिशा में खुला छोड़ दें, जिससे पौधों को उचित मात्रा में प्रकाश तथा हवा प्राप्त हो सके। वृक्षों को 'मिलीबग' के प्रकोप से बचाने के लिए उद्यान की जुताई कर देनी चाहिए, ताकि इन कीटों के अंडे और प्यूपे नष्ट हो जाएं। मिलीबग कीट को पेड़ों पर चढ़ने से रोकने के लिए 30-45 सें.मी. चौड़ी एल्काथीन पॉलीथीन को जमीन से 40-60 सें.मी. ऊपर तने पर बांधना चाहिए। पॉलीथीन को बांधने से पहले छाल के सभी छिद्रों और दरारों को मिट्टी से पलस्तर कर देना चाहिए, अन्यथा कीट उन दरारों से होकर पेड़ों पर चढ़ सकते हैं। जब निम्फ वृक्ष पर चढ़ चुके हों, उस अवस्था में वहां कार्बेरिल (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए। दिसंबर में 10 वर्ष से ज्यादा आयु के वृक्षों में 1500 ग्राम फॉस्फोरस तथा 1000 ग्राम पोटाश प्रति वृक्ष की दर से दें। इसके साथ ही गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद (30 से 40 कि.ग्राम/वृक्ष) का प्रयोग अवश्य करें।

लीची

नवंबर-दिसंबर में लीची में पुष्पन आरंभ हो जाता है। इस अवधि में उद्यान में नमी की उचित मात्रा को बनाए रखना आवश्यक है। लीची में 'मिलीबग' की रोकथाम के लिए प्रति वृक्ष 250 ग्राम मिथाइल पैराथियान का बुरकाव पेड़ के एक मीटर के घेरे में कर दें। फिर पेड़ के तने पर जमीन से 30-40 सें.मी. की ऊंचाई पर 400 गेज वाली एल्काथीन पॉलीथीन की 30 सें.मी. चौड़ी पट्टी सुतली आदि से कसकर बांध दें और उसके दोनों सिरों पर गीली मिट्टी या ग्रीस से लेप कर दें। इससे पेड़ पर मिलीबग का प्रकोप नहीं होगा। दिसंबर में गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद (25 से 30 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष) का उद्यान में प्रयोग करें।

बेर

नवंबर-दिसंबर में बेर में फल- मक्खी का प्रकोप ज्यादा होता है। ये विकसित हो रहे फलों में अंडे देती हैं। प्रभावित फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए तथा फलमक्खी की रोकथाम के लिए डाइमेक्रॉन (1.5 ग्राम/लीटर) के घोल का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त बागों में 4-5 जगहों पर युग्नाल+मेलाथियान+गुड़ का घोल बनाकर खुले बर्तनों में रखें। फलमक्खियां इस घोल की ओर आकर्षित होती हैं और खाकर मर जाती हैं। तनाछेदक कीट का प्रकोप होने की अवस्था में रूई को पेट्रोल से भिगोकर कीटों द्वारा तने में बनाए गए छिद्रों को भर दें। इसके

बेर की फलमक्खी

पश्चात इसे मिट्टी से बंद कर दें, ताकि कीट उसी में मर जाएं।

बेर में फलों का झड़ना भी एक प्रमुख समस्या है, जिसकी रोकथाम के लिए 2, 4 डी (10-15 पी.पी.एम.) का छिड़काव लाभदायक है। इन रसायनों के छिड़काव से फलों के झड़ने में अभूतपूर्व कमी होती है। एक छिड़काव सितंबर या अक्टूबर में करें। जब वृक्ष पर फूल पूरी तरह से आ जाएं तथा दूसरा छिड़काव प्रथम छिड़काव के एक माह पश्चात करें।

अनार

इस द्विमाही में अनार को बैक्टीरियल ब्लाइट, कवक रोगों और हानिकारक कीटों से बचाने के लिए स्ट्रैप्टोसाइक्लिन (0.5 ग्राम/लीटर जल में) + मैंकोजेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण (2 ग्राम/लीटर जल में) में टीपोल या ट्वीन 20 (0.5 मि.ली. प्रति लीटर की दर से) का छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त बोर्डो मिश्रण (0.5 प्रतिशत) तथा ब्रोनोपोल (0.5 ग्राम प्रति लीटर जल में) + कैप्टॉन 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण (2 ग्राम/लीटर जल में) का पांच से सात दिनों के अंतराल पर छिड़काव भी लाभकारी होता है। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें।

अनार में बैक्टीरियल ब्लाइट

आंवला

विभिन्न क्षेत्रों में आंवला के फलों की तुड़ाई नवंबर-फरवरी के बीच होती है। जिन क्षेत्रों में इसकी तुड़ाई का कार्य नवंबर-दिसंबर में हो, उन क्षेत्रों में इस दौरान फलों से लदे वृक्षों को बांस-बल्ली की सहायता से सहारा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि शाखाओं को टूटने से रोका जा सके। इस दौरान फलों का भी विकास होता है, अतः सिंचाई की भी समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ध्यान रहे कि तुड़ाई से 15 दिनों पूर्व सिंचाई रोक दी जाए, ताकि फल समय से तैयार हो सकें। दीमक से बचाव के लिए फोरेट 10 जी प्रति पौधा 25-30 ग्राम डालकर मृदा में मिला दें। शूटगॉल कीट से ग्रस्त टहनियों को काटकर जला दें एवं पेड़ों पर डाइमेथोएट 2 मि.ली. एवं मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। फलों के झड़ने की समस्या होने पर बोरेक्स (0.6 प्रतिशत) का छिड़काव करें। दिसंबर में फल गलन की समस्या होने पर ब्लाइटॉक्स (3 ग्राम/लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें। तैयार हो चुके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था भी करें।

केला

नवंबर-दिसंबर में केले में प्रति पौधा 55 ग्राम यूरिया का प्रयोग करें। 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। पर्णचित्ती एवं फल सड़न रोग से बचाव के लिए 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें। 15 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई अवश्य करें। केला पाले के प्रति बहुत संवेदनशील होता है। दिसंबर में पौधों को पाले से बचाने की विशेष व्यवस्था करें। इसके लिए उद्यान में रात के समय धुआं करें एवं समय-समय पर हल्की सिंचाई करते रहें।

चीकू

इस द्विमाही में चीकू में दीमक से बचने के लिए क्लोरोपाइरीफॉस (2 मि.ली. प्रति लीटर जल में) का छिड़काव करें। जमीन के नीचे तथा मुख्य शाखा के निचले हिस्से से निकलने वाले अंकुरों को निकाल दें। मूलवृंत से निकलने वाली शाखाओं को निकाल दें। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। बाग से खरपतवारों को निकालते रहें तथा बाग में सफाई का ध्यान रखें, ताकि कीटों से होने वाली हानि से बचा जा सके।

अनन्नास

नवंबर-दिसंबर में फसल निर्धारण के लिए पौधों की पत्तियों में शाम के समय 25 पीपीएम नेफ्थेलिन एसिटिक अम्ल का घोल

तैयार अनन्नास

रात के समय डालें। तैयार फलों की तुड़ाई कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। अनन्नास में रोग या कीट से ग्रस्त भागों और पौधों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। खरपतवार को हटाएं एवं बागों में पलवार का प्रबंध करें। इससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहेगी एवं खरपतवार भी नियंत्रित रहे। अक्टूबर में अनन्नास फसल के अवशेषों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। मृदा की स्थिति, प्रकार, पौधे की आयु एवं अवस्था तथा मौसम की स्थिति के अनुसार सिंचाई करें। पौधे की आयु के अनुसार फॉस्फोरस और पोटाश दें। कीट एवं रोगों से बचाने के लिए 2 प्रतिशत नीम के तेल का का छिड़काव करें। जिन फसलों में कीट तथा रोग कम लगते हैं, उन्हें बाग के सीमा के पास लगाएं।

नीबूवर्गीय फल

नवंबर-दिसंबर में बहुत से नीबूवर्गीय फल तुड़ाई के लिए तैयार होना शुरू हो जाते हैं। इसी समय फलों का तुड़ाई-पूर्व गिरना एक गंभीर समस्या है। फलों के गिरने से रोकने के लिए 10 पी.पी.एम. 2,4-डी (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) का छिड़काव अवश्य करें। दिसंबर में नीबूवर्गीय फलों में गोंदार्ति की आशंका बढ़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए तने के प्रभावित हिस्से वाली छाल को खुरचकर निकाल दें। इसके बाद बोर्डो लेप (1:2:20) का प्रयोग खुरचे भाग एवं इसके चारों ओर के स्वस्थ भाग पर करना चाहिए। दिसंबर में तैयार फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें।

कटहल

नवंबर में तैयार हो चुके फलों को तोड़कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें। इसी माह फलों से बीज निकालकर पौधशाला में बुआई करें। फलदार वृक्षों में नवंबर में गोबर की खाद तथा फॉस्फोरसयुक्त उर्वरक का प्रयोग करें। चूर्णिल रोग का प्रकोप होने पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम/लीटर पानी में) का छिड़काव करें। मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए वृक्षों पर आम की भांति पॉलीथीन लगाएं।

खजूर

नवंबर-दिसंबर में खजूर के बागों में कोई विशेष कार्य नहीं किया जाता है। इस दौरान 15 दिनों के अंतराल पर वृक्षों की सिंचाई की जानी चाहिए। यद्यपि खजूर में इस दौरान कोई व्याधि नहीं होती है, फिर भी यदि किसी व्याधि अथवा कीट का प्रकोप हो तो उसकी निगरानी रखी जानी चाहिए, ताकि समय पर उचित प्रबंधन किया जा सके।

लोकाट

नवंबर में लोकाट में फूल आते हैं।

फलों से लदी लोकाट की टहनी

शीत ऋतु में सेब के बाग का आकर्षक दृश्य

इस दौरान बागों में सिंचाई नहीं की जानी चाहिए। दिसंबर में फल लगने शुरू होने के बाद 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए, ताकि फलों का विकास हो सके। नवंबर में ही पॉलीथीन की चादरों से पलवार लगानी चाहिए, ताकि भूमि की नमी को संरक्षित किया जा सके।

सेब

नवंबर में उद्यान की सफाई कर निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए। दिसंबर में नए

सेब में सधाई प्रणाली

बाग लगाने के लिए गड्ढों को प्रथम सप्ताह तक भर देना चाहिए। निचले पहाड़ी इलाकों में जहां ठंड ज्यादा नहीं रहती है, इसकी रोपाई इस माह के अंत तक कर सकते हैं। अच्छी फसल के लिए उद्यान में 2-3 किस्मों का होना आवश्यक है। अधिक ठंड वाले क्षेत्रों में इसी माह पौधों की काट-छांट का कार्य भी करें। इसके बाद कटे हुए भाग को चौबटिया लेप से लेपन करें। चौबटिया लेप कॉपर-कार्बोनेट, रेड लेड और अलसी के तेल को 4:4:6 के अनुपात में मिलाकर तैयार कर सकते हैं। तना सड़न रोग की रोकथाम के लिए डायथेन एम-45 अथवा बाविस्टिन के घोल का तने के चारों ओर छिड़काव करें। सेंजोस स्केल कीट की रोकथाम के लिए हिन्दुस्तान पेट्रोलियम, स्प्रे ऑयल अथवा एग्रो स्प्रे ऑयल का छिड़काव दिसंबर में अवश्य करें।

आड़ू, खुबानी, आलूबुखारा

नवंबर में पौधों को पर्ण कुंचन और माहूं कीट से बचाने के लिए 200 मि.ली. रोगार 30 ई.सी. के घोल का 4-8 लीटर/वृक्ष की दर से छिड़काव करें। दिसंबर में नए बाग लगाने के लिए गड्ढों को भर देना चाहिए। गड्ढा भरने के लिए गोबर की खाद 15 से 20 कि.ग्रा./गड्ढा तथा फॉस्फोरसयुक्त उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। इसी माह पौधों की काट-छांट का कार्य भी करें। जड़छेदक कीट से बचाव के लिए क्लोरपाइरीफॉस का प्रयोग करें। तराई और मैदानी क्षेत्रों में आड़ू की रोपाई का कार्य दिसंबर के अंत तक समाप्त कर लें।

अंगूर

नवंबर में अंगूर के बाग की सफाई कर इसे खरपतवारमुक्त रखें। हल्की सिंचाई

अंगूर की काट-छांट जरूरी

के बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करें। दिसंबर नए उद्यान लगाने के लिए अच्छा होता है। इस माह के अंतिम सप्ताह में एक वर्ष पुरानी जड़सहित लताओं को गड्ढों के बीच में लगाकर सिंचाई करनी चाहिए। रोपाई के बाद नीचे से 15 सें.मी. की ऊंचाई से पौधों को छांटना चाहिए। दिसंबर में अंगूर की लताएं सुषुप्तावस्था में आ जाती हैं। इस अवस्था में लताओं से पत्तियां पीली होकर झड़ जाती हैं। इसी अवस्था में अंगूर की कटाई-छंटाई का कार्य किया जा सकता है।

स्ट्रॉबेरी

खेत तैयार करने से पहले 40-50 टन प्रति हैक्टर की दर से गोबर की सड़ी खाद डाल लें। इसके बाद खेत की जुताई करें। बाग लगाने के लिए 10 × 3 × 0.5 फुट आकार की क्यारियां तैयार कर लें। अक्टूबर के अंत या नवंबर के शुरू में उद्यान में स्ट्रॉबेरी के पौधों की रोपाई करें। नवंबर में रोपित पौधों

स्ट्रॉबेरी में पलवार

से फुटाव शुरू हो जाएगा। फुटाव शुरू होने पर बाग की निराई-गुड़ाई करके खरपतवार आदि निकाल दें। पौधों में जब 4-5 पत्तियां आ जाएं तो नाइट्रोजन की प्रथम मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। दिसंबर में पत्तियों का धब्बा रोग दिखने पर डाइथेन एम-45 (2 ग्राम/लीटर पानी में) या बाविस्टिन (1 ग्राम/लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें। यदि संभव हो तो क्यारियों पर पॉलीथीन का टैंट लगा दें, ताकि पौधों की अच्छी बढ़त हो। दिसंबर में नाइट्रोजन व पोटाश की शेष मात्रा अवश्य दें।

पौधों में नियमित अंतराल पर सिंचाई करते रहें। पौधों में पलवार की भी उचित व्यवस्था करें। इसके लिए सुविधानुसार पुआल, पौधों की पत्तियों, पॉलीथीन आदि का प्रयोग करें।

आम की नई किस्में अम्बिका और अरुणिका विकसित

वैज्ञानिकों ने फलों के राजा आम की दो ऐसी किस्में विकसित की हैं, जो न केवल मनमोहक हैं बल्कि इनमें प्रत्येक वर्ष फलने की क्षमता है। ये कैंसररोधी गुणों के अलावा विटामिन 'ए' से भरपूर हैं, जिसके कारण बाजार और किसानों में इनकी भारी मांग है।

भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ ने आम की संकर किस्में अम्बिका और अरुणिका विकसित की हैं, जो अपने सुंदर रंगों और स्वाद के कारण सबका मनमोह लेती हैं। लाल रंग का फल होने के कारण बरबस सबका ध्यान उनकी तरफ चला जाता है। प्रत्येक वर्ष फलन की खासियत इन्हें एक साल छोड़कर फलने वाली आम की अन्य किस्मों से अधिक महत्वपूर्ण बनाती है।

संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसार देखने में तो ये किस्में खूबसूरत हैं ही, खाने में स्वादिष्ट होने के साथ-साथ पौष्टिकता से भरपूर भी हैं। अरुणिका मिठास और विटामिन 'ए' के अतिरिक्त कई कैंसररोधी तत्वों जैसे-मंगीफेरिन और लयपेओल से भरपूर है। इसके फल टिकाऊ हैं और ऊपर से खराब हो जाने के बाद भी उनके अन्दर के स्वाद पर कोई असर नहीं पड़ता है।

इन दोनों किस्मों को देश के विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। प्रत्येक वर्ष फल देने के कारण पौधों का आकार छोटा है और अरुणिका का आकार तो आम्रपाली जैसी बौनी किस्म से भी 40 प्रतिशत कम है।

जब लोगों ने देखा कि अरुणिका के पौधे आम्रपाली से भी छोटे आकार के हैं तो इस किस्म में लोगों की रुचि बढ़ गयी। नियमित रूप से अधिक फलन ही इस किस्म के बौने आकार का रहस्य है।

आम्रपाली ने अम्बिका और अरुणिका दोनों के लिए ही मातृ पौध की भूमिका निभाई है। आम्रपाली के साथ वनराज के संयोग से अरुणिका का जन्म हुआ, जबकि आम्रपाली और जनार्दन पसंद के संकरण से अम्बिका की उत्पत्ति हुई। जनार्दन पसन्द दक्षिण भारतीय किस्म है और वनराज गुजरात की प्रसिद्ध किस्म है। ये दोनों ही पिता के तौर पर इस्तेमाल की गयी प्रजातियां देखने में सुन्दर और लाल रंग वाली हैं, परन्तु स्वाद में आम्रपाली से अच्छी हैं। आम्रपाली को मातृ किस्म के रूप में प्रयोग करने के कारण अम्बिका और अरुणिका दोनों में ही नियमित फलन के जीन्स आ गएं हैं। इन किस्मों को खूबसूरती पिता से और स्वाद एवं अन्य गुण माता से मिले। आम्रपाली में विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में है इसलिए अरुणिका में आम्रपाली से भी ज्यादा विटामिन 'ए' मौजूद है।

अम्बिका और अरुणिका दोनों ही किस्मों ने पूरे देश भर में विभिन्न प्रदर्शनियों में सबका मन मोह लिया। इतना ही नहीं अम्बिका ने 2018 और अरुणिका ने 2019 में आम महोत्सव में प्रथम स्थान प्राप्त करके अपने गुणों की सार्थकता सिद्ध की है। समय के साथ ये किस्में लोगों में लोकप्रिय होती जा रही हैं और संस्थान में इनके पौधों की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है।

विदेशी फल लौंगन की नई किस्म का विकास

वैज्ञानिकों ने देश में पहली बार लीची जैसे स्वादिष्ट विदेशी फल लौंगन की एक किस्म का विकास कर लिया है। यह फल रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और कैंसररोधी के साथ-साथ विटामिन 'सी' और प्रोटीन से भरपूर भी है। भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर के वैज्ञानिकों ने लगभग एक दशक के अनुसंधान के बाद लौंगन की 'गंडकी उदय' किस्म का विकास किया है। लीची परिवार का यह फल चीन, मलेशिया, थाईलैंड आदि में पाया जाता है।

लीची अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने बताया कि लीची के मौसम के बाद लोग लौंगन के फल का मजा ले सकेंगे। यह रसीला होता है और इसका स्वाद लीची से मिलता-जुलता है। इसका फल अगस्त में पककर तैयार हो जाता है, जबकि लीची की फसल इससे पहले समाप्त हो जाती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार लौंगन का फल रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के साथ ही कैंसररोधी गुणों वाला भी है। इसमें भरपूर मात्रा में विटामिन 'सी' के साथ ही प्रोटीन, ओमेगा 3 और ओमेगा 6 भी पाया जाता है। लौंगन में कार्बोहाइड्रेट, कैरोटीन, फाइबर, थाइमिन और कुछ अन्य तत्व भी पाए जाते हैं।

लौंगन का पेड़ लीची की तरह का होता है और यह लगाने के दो साल बाद ही फलने लगता है। इसके एक वयस्क पेड़ में डेढ़ से दो क्विंटल तक फल लगते हैं। इसका फल लीची से भी मीठा होता है। इसकी मिठास 22 से 25 डिग्री टीएसएस होती है। लौंगन का फल गुच्छों में फैलता है। इसके एक फल का वजन 10 से 14 ग्राम तक होता है। केन्द्र में इसके 17 ग्राम तक के फल लिए गए हैं।

वैज्ञानिकों के अनुसार लौंगन के फल का 65 प्रतिशत हिस्सा खाने योग्य होता है। शेष हिस्सा छिलका और बीज का होता है।

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 73 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा ***'कृषि खबरें, देश विदेश की'*** जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्य:

एक प्रति : 30 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 300 रुपये

संपर्क सूत्र:

व्यवसाय प्रबंधक

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012

दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : bmicar@icar.org.in

डा. एस. के. सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह